पाणिनीयशिक्षा का ओडिया भाषा में अनुवाद-प्रविधि-गत समस्याएं

(Pāṇinīya śikṣa kā Odiyā bhāṣa meṁ anuvāda – pravidhi - gata samasyāeṁ)

Dissertation submitted to Jawaharlal Nehru University
In partial fulfillment of the requirements
For the award of the Degree of

Master of Philosophy

Sachidananda Naik

School of Sanskrit and Indic Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi
110067

2018

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - ११००६७

School of Sanskrit and Indic Studies

Jawaharlal Nehru University

New Delhi - 110067

23rd July, 2018

DECLARATION

I declare that the dissertation entitled "पाणिनीयशिक्षा का ओडिया भाषा में अनुवाद - प्रविधि-गत समस्याएं" (Pāṇinīya śikṣa kā Odiyā bhāṣa meṁ anuvāda – pravidhi - gata samasyāeṁ) submitted by me for the award of degree of **Master of Philosophy** is an original research work and has not been previously submitted for any other degree or diploma in any other institution/University.

सच्चिदानन्द नायक

(सच्चिदानन्द नायक)

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - ११००६७

School of Sanskrit and Indic Studies

Jawaharlal Nehru University

New Delhi - 110067

23rd July, 2018

CERTIFICATE

The dissertation "पाणिनीयशिक्षा का ओडिया भाषा में अनुवाद – प्रविधि-गतसमस्याएं" (Pāṇinīya śikṣa kā Odiyā bhāṣa meṁ anuvāda – pravidhi - gata samasyāeṁ) submitted by Sachidananda Naik to School of Sanskrit and Indic Studies Jawaharlal Nehru University, New Delhi - 110067 for the award of degree of **Master of Philosophy** is an original research work and has not been submitted so far, in part or full, for any other degree or diploma in any University. This may be placed before the examiners for evaluation.

Prof. Girish Nath Jha
(Dean, SSIS)

Dean
School of Sanskrit & Indic Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067, INDIA

Prof. Girish Nath Jha
(Supervisor)

PROF. GIRISH NATH JHA
Supervisor
School of Sanskrit & Indic Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067, INDIA

पूज्य पितामाता जी को

समर्पित करता हूँ।

आत्मनिवेदन

सच्चिदानन्द स्वरुपं विश्वत्पतये हेतवः।

तापत्रयविनाशायं श्रीकृष्णाय नुमः॥

परमपिता परमात्मा श्रीकृष्ण के अङ्ग में सम्पूर्ण सृष्टि का सौन्दर्य विद्यामान है, जिनकी लीला का श्रवण करने से दुर्जय मन भी शीघ्र ही भगवान में आसन्न हो जाता है। जिनका एक नाम लेनेमात्र से पाप में आसक्त जीव भी भय से मुक्त हो जाता है, उन्हें में कोटिशः प्रणाम करता हुँ।तदन्तर पूज्य गुरूदेव गिरीश नाथ झा जिनकी महत कृपा से कुशल मार्ग निर्देशन में मुझे पाणिनीयशिक्षा अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ तथा महोदय ने निष्ठा व परिश्रमपूर्वक अध्यापन कराकर शोधकार्य में प्रवृत कर निरन्तर उत्साहवर्द्धन किया।

भारतीय संस्कृति एवं प्राच्यविद्द्या अध्ययन संस्था के सभी गुरुजन श्री.उपेन्द्रराव सर, हरिराम मिश्र, रजनीशकुमार मिश्र, सुधीर कुमार आर्य, सन्तोष कुमार शुक्ल, टि.महेन्द्र, गोपाललाल मीणा, सत्यमूर्ती, ब्रजेश कुमार पाण्डे, गिरीश नाथ झा, रामनाथ झा के प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हुँ, जिन्होंने मुझे प्रयत्नपूर्वक शिक्षा प्रदान कर शोधकार्य के योग्य बनाया।

मेरी माता श्रीमती झुनु नायक व पिता श्री प्रमोद कुमार को कोटिशः प्रणाम व धन्यवाद कारता हुँ, जिन्होंनें मेरे इस कार्य के साफल्य की प्रार्थना की व सहयोग दिया।

शोधकार्य हेतु विशेष धन्यवाद ज्ञापन करता हुँ,कीर्त्तीमयी,भाग्यश्री, रश्मी, कवि,ललित, सीताकान्त, अखिलेश, भबेश, सन्तोष, ज्वलन्त, राजेश, दीपक, सुदिम्न, प्रबोध, मनोज, बुद्धिआ, सहदेब, अनिल, उन सभी का जिन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रुप से सहयोग प्रदान किया तथा धन्यवाद ज्ञापित करता हुँ।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,लाल बहादुरशास्त्री विद्यापीठ तथा राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान पुस्तकालय के कर्मचारीवर्ग का आभार प्रकट करता हुँ, जिन्होनें मुझे शोधकार्य से सम्बन्धित विभिन्न ग्रन्थों व पत्रिकाओं को उपलब्ध कराकर मुझे सहायता प्रदान की।केन्द्र में कार्यरत सभी कर्मचारीवर्ग का धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ।

सच्चिदानन्द नायक

संक्षिप्ताक्षर

अ.ष्टा - अष्टाध्यायी

अ.शा - अर्थशास्त्रम्

अथर्व- अथर्ववेद

अम.को - अमरकोश

ऋ.भा - ऋग्वेदभाष्य

ऋ.वे - ऋग्वेद

तै.शि - तैतरियशिक्षा

ध.सं - धर्म संग्रहः

नि. - निरुक्त

पा.भा - पञ्चिकाभाष्य

पा.शि - पाणिनियशिक्षा

म.भा - महाभाष्य

म.स्मृ - मनुस्मृति

मू.उ - मूड्कोपनिषद्

य.जु - यजुर्वेद

शि.शा - शिक्षाशास्त्र

श्री.गी - श्रीमद्भगवद्गीता

स.सा.इ - संस्कृतसाहित्य इतिहास

विषयानुक्रमणिका

आत्मनिवेदन 5

संक्षिप्ताक्षर i

विषयानुक्रमणिका iii

भूमिका v

वेदाङ्ग का परिचय v

शिक्षा का अर्थः viii

शिक्षा का उद्देश्यः viii

शिक्षाग्रन्थः ix

पाणिनीय शिक्षाः x

अध्याय विभाजन xi

प्रथम अध्याय : वेदाङ्गों में शिक्षा का स्थान तथा परम्परा 1

1. वेदाङ्ग 1

1.1. शिक्षा 1

1.2. कल्प 2

1.3. व्याकरण 3

1.4. निरुक्त 4

1.5. ज्योतिष 4

1.6. छन्द 5

1.7. छन्दोविषयक ग्रन्थः 5

2. शिक्षा की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा 6

3. पाणिनि का परिचय 19

4. पाणिनीयशिक्षा की संरचना 20

5. प्रस्तुत क्षेत्र में विद्यमान पूर्ववर्ती शोधकार्य- 21

7. भारतीय भाषा में पाणिनीयशिक्षा का अनुवाद 23
8. प्रस्तुत शोधकार्य का वैशिष्ट्य 23
9. शोधप्रविधि 24
द्वितीय अध्याय : पाणिनीयशिक्षा का ओडिया भाषा में अनुवाद 25
तृतीय अध्याय : अनुवाद और अनुवाद-चिन्तन की परम्परा 47
3.1. अनुवाद शब्द : अर्थ और व्युत्पत्ति 47
3.2. अनुवाद का इतिहास 49
3.3. अनुवाद की शैलियाँ 53
3.4. अनुवाद: समस्याएँ और समाधान 57
उपसंहार 60
ध्वन्यात्मक शब्द Phonetic Terms 67
मूल ग्रन्थ 69
सन्दर्भग्रन्थ सूची 73

भूमिका

वेदाङ्ग का परिचय

वेदाङ्ग का अर्थ है वेदस्य अंगानि[1] वेदों के गूढ एवं वास्तविक अर्थों को जानने के लिए जिन सहायक तत्वों की आवश्यकता होती है उन्हें वेदाङ्ग कहते है। वेदाङ्गो के द्वारा मंन्त्रो का अर्थ, व्याख्या, यज्ञ, अनेक कार्य वोध होता है। प्रथमतः वेदाङ्ग वेदाध्ययन के लिए विशिष्ट उपयोगी साधन थे। आधुनिक काल में स्वतंत्र विषयों के रुप में विकसित हुए है।

वेदांग की संख्या छः हैं। इनके नाम हैं-

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।

कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥[2]

पाणिनीय शिक्षा में छः वेदाङ्गो का वेद पुरुष के छः अंङ्गो के रुप में वर्णन किया गया है।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोअथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम। तस्मात्सगंमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥[3]

वेदाङ्ग का प्राचीनतम क्रमबद्ध उल्लेख मुंडक उपनिषद में प्राप्त होता है-

तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद ब्रह्मविदे वदन्ति परा चैवाऽपरा च। तत्राऽपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदोः सामवेदोथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दों ज्योतिषमिति[4]।

आपस्तम्बधर्मसूत्र में वेदांगों के क्रम इस प्रकार है- षड् वेदः ,छन्दःकल्पो व्याकरणं ज्योतिषं

निरुक्तं शीक्षा च्छन्दोविचितिरिति।[5]

---

[1] वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ-१८९।

[2] वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,पृ-१८९।

[3] पाणिनीयशिक्षा४१-४२।

[4] मुण्डक उपनिषद१.१.५

[5] आपस्तम्बधर्मसूत्र २।४।१।११

कातिय-गोत्रचरणपृछा-प्रतिज्ञासूत्र में भी वेदाङ्गो का क्रमवद्ध उल्लेख किया गया है- शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति षडङ्गांनि। [6]

कौटलीय अर्थशास्त्र में भी वेदागों का उल्लेख किया गया है-

"**शिक्षा कल्पो व्याकरणं छन्दोविचितिर ज्योतिषमिति चाअगांनि**"[7]

वेदांङ्गो का उल्लेख श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। पाणिनीय शिक्षा की शिक्षाप्रकाश व्याख्या में भी यह बात प्रतिपादित किया गया हैं। वेद के स्वरूप, प्रयोग, अर्थ और रहस्य को अच्छी तरह से समझाने के हेतु ही मुनीयों ने ये वेदांगों रूप सोपान बनाए हैं। यास्क के निरुक्त में आए हुए कथन से स्पष्ट ज्ञात होता है। यथा- "**साक्षातकुत्तधर्माण ऋषयो बभूवुस तेअवरेभ्योअसाक्षातकृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रन सम्प्रादुः, उपदेशाय ग्लयन्तोअवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर वेदं च वेदागांनि च**"। [8]

इस प्रकार स्पष्ट है कि वेदांङ्ग छह हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंदशास्त्र और ज्योतिष।चारों वेदों के साथ उनके छ: वेदांगों की गणना कराकर उन्हें अपरा विद्या कहा गया है- **तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदःसामवेदोअ्थर्ववेदःशिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।**[9] इन छः वेदागों के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं –

१.वेदों का अर्थबोध (व्याकरण तथा निरुक्त)

२.उनका सही उच्चारण (शिक्षा तथा छन्द) एवं

३.वेदों का प्रयोग (कल्प तथा ज्योतिष)

---

[6] काण्डिका ४, सूत्र ४।

[7] अर्थशास्त्र१।३।

[8] निरुक्त १।६।४

[9] मुण्डक उपनिषद १.१.५

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोअथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम। तस्मात्सगंमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥[10]

वेदमन्त्र पादों में विभाजित हैं। छन्द से वेदमन्त्र के पादों की सीमा ज्ञात होती है। कल्प कर्मकाण्ड के विषय हैं। ज्योतिष के द्वारा कर्मानुष्ठान के काल पर दृष्टि रखी जाती है। निरुक्त अर्थज्ञान देता है। इसीलिए निरुक्त को वेद -पुरुष का श्रोत्र कहा गया है। शिक्षा नासिका का रुप दिया गया है। व्याकरण उच्चरित शद्वों की शुद्धाशुद्धता का तथा उनकी व्युत्पत्ति का विचार करने से वेद-पुरुष का मुख है। छः वेदाङ्ग अपने आप में पूर्ण शास्त्र या विज्ञान है। शिक्षा वेद की घ्राणेन्द्रिय है। जिस प्रकार शरीर में नासिका को उन्नत स्थान प्राप्त है। तथा इस इन्द्रिय का सम्बन्ध प्राण के साथ है। प्रकृत पाणिनीय शिक्षा ग्रन्थ में भी "शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य" [11] के प्रतिपादन में प्रयुक्त "तु" शब्द यह सूचित करता है। कि शिक्षाशास्त्र किसी अन्य वेदाङ्ग से तुलनीय नहीं है। क्योंकि श्वास-प्रश्वास के गतिशील रहने पर ही समस्त लोक जीवन धारण में समर्थ होता है। शिक्षाशास्त्रों का विधिवत ज्ञान जहाँ वेद के स्वरुप की रक्षा करता हुआ स्वर्ग लोक च कामधुक भवति[12] वचन को चरितार्थ करता है।

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तदर्थमाह ।
स वग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥[13]

शिक्षा का उचित ज्ञान न होने से विरुद्ध स्वर का उच्चारण हो जाता है। वेद मन्त्र का पाठ यदि यथार्थ स्वर और वर्ण की थोडी भी त्रुटी हो जाती है तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। मिथ्या-

---

[10] पाणिनीयशिक्षाश्लोक४१-४२।

[11] पाणिनीयशिक्षा,श्लोक४१-४२।

[12] महाभाष्य

[13] पाणिनीयशिक्षाश्लोक५२

प्रयुक्त होने के कारण वह, उस अभीष्ट अर्थ का बोध नहीं होता है। वह वाक् रूपी वज्र बनकर यजमान के लिए अनिष्टकारक बन जाता है।

शिक्षा का अर्थः

शिक्षा का अर्थ है- वर्णोच्चारण की शिक्षा देना। सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में शिक्षा का अर्थ है- जिसमें स्वर,वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है उसे शिक्षा कहते है। वेदों के स्वर, वर्ण आदि के शुद्ध उच्चारण करने की शिक्षा जिससे मिलती है, वह शिक्षा है। वेदों के मन्त्रों का पठन पाठन तथा उच्चारण ठीक रीति से करने की सूचना इस शिक्षा से प्राप्त होती है। **स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा।**[14]

शिक्षा का उद्देश्यः

वर्णोच्चारण की शिक्षादेना,वर्ण का किस स्थान से उच्चारण करना, क्या प्रयत्न करना, उनका विभाजन किस रुप में होना, कितने स्थान और क्या प्रयत्न हैं। शरीर-वायु किस प्रकार वर्ण के रुप में परिवर्तीत होती है। कितने स्वर है। किस स्वर का किस प्रकार उच्चारण किया जाता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के छः अङ्गों का उल्लेख है-

वर्णः, स्वरः, मात्रा, वलम् , साम, सन्तानः, इत्युक्तःशिक्षाध्ययः।[15]

१.वर्णः- वर्ण वा ध्वनि वेदों में ५२ वर्ण प्राप्त है। स्वर-१३, स्पर्श-२७ (क से म,ल् औरल्ह्) य र ल व श ष स ह-८, विसर्ग, अनुस्वार, जिह्वामूलीय और उध्मानीय -४=५२।

२.स्वरः- स्वर वर्ण तीन प्रकार है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

---

[14] सायण, ऋग्वेदभाष्य,पृ४९

[15] तैत्तिरीय उपनिषद्,श्लो.१.२।

३.मात्राः- स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। मात्रा तीन प्रकार हैं। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत।

४.बलः- वर्णों के उच्चारण में होने वाले प्रयत्न और उनके उच्चारण स्थान को बल कहते है। प्रयत्न दो प्रकार।१.आभ्यन्तर २.वाह्य।[16]

५.सामः-समविधि से सुस्पष्ट एवं सुस्वर से उच्चारण।स्वर एवं अर्थज्ञान-सहित प्रत्येक वर्ण का स्पष्ट उच्चारण करें।

६.सन्तानः- इसका अर्थ है संहिता अर्थात पदपाठ में प्रयुक्त शद्वों में संन्धि नियमों को लगाना। इसके लिए संधिनियोमों को जानना और उनका यथास्थान उपयोग करना।[17]

शिक्षाग्रन्थः

आजकाल ३५ शिक्षाग्रन्थ उपलव्ध हैं। इनमें मंन्त्रों के उच्चारण आदि का विस्तृत वर्णन है। ३२ शिक्षा ग्रन्थों का एक संकलन शिक्षासंग्रह नाम से प्रकाशित है।[18] इनमें ध्वनि विज्ञान से संबद्ध अनेक महत्वपूर्ण तथ्य दिए गए हैं। स्वर एवं व्यंजनों का भेद,स्वरों के उच्चारण संबन्धी अनेक भेद, स्थान प्रयत्न विवरण, अनुस्वार अनुनासिक का अन्तर,विसर्ग के विभिन्न रुप,ओ-औ के संवृत-विवृत रुप, वर्णोच्चारण की विधि, संधियों का विवेचन वर्णन है।

ऋग्वेदीय शिक्षाग्रन्थ-

शैशिरीय शिक्षा, शौनकीय शिक्षा, स्वरव्यञ्जन शिक्षा, शमान शिक्षा।

यजुर्वेदीय शिक्षाग्रन्थ-

---

[16] इनके विशेष विवरण के लिए देखेःसिद्धान्त कौमुदी संज्ञाप्रकरण।

[17] वैदिकसाहित्य एवं संस्कृति,पृ-१९२।

[18] युगलकिशोर पाठक द्वारा संपादित,बनारस सीरीज,में काशी से १८९३ ई.में प्रकाशित।

भारद्वाजशिक्षा, व्यासशिक्षा, शम्भुशिक्षा, कौहलीय शिक्षा, बौधायन शिक्षा, वासिष्ठी शिक्षा, वाल्मीकि एवं हारीत शिक्षा, आरण्यशिक्षा,

शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित शिक्षाग्रन्थ-

याज्ञवल्क्यशिक्षा, वासिष्ठी शिक्षा, कात्यायनी शिक्षा, पाराशरी शिक्षा, माण्डवी शिक्षा, अमोघानन्दिनी शिक्षा, माध्यन्दिन, केशवी शिक्षा, मल्लशर्म शिक्षा, षोडशश्लोकी शिक्षा, अवसाननिर्णयशिक्षा, स्वरभक्तिलक्षणपरिशिष्टशिक्षा, गलदृक् शिक्षा, प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा, यजर्विधानशिक्षा, स्वराङ्कशशिक्षा, स्वराष्टकशिक्षा।

सामवेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ -

नारदीयशिक्षा, लोमशीशिक्षा, गौतमी शिक्षा,

अथर्ववेद से सम्बद्ध शिक्षायें-

माण्डूकी शिक्षा।[19]

इनके अतिरिक्त कुछ शिक्षा–सूत्र मिलते है। इनमें आपिशलि, पाणिनि और चन्द्रगोमी के शिक्षासूत्र प्रकाशित हैं।[20] इनमेंध्वनि-विज्ञान से संबद्ध अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हैं। इनमें अक्षरों की उत्पत्ति, स्थान और प्रयत्न, वाह्या और आभ्यन्तर करण आदि का विवेचन है।

विशेष उल्लेखनीय शिक्षा–ग्रन्थः

पाणिनीय शिक्षाः

यह अत्यन्त प्रसिद्ध शिक्षाग्रन्थ है। वैदिक और लौकिक दोनों के लिए उपयुक्त है। इसमें ६० श्लोक हैं। मुख्य विषय वर्णों की संख्या, उच्चारण प्रक्रिया का ध्वनि वर्णन, स्थान और प्रयत्न का

---

[19] पाणिनीयशिक्षा ,सत्यप्रकाश दुवे,पृ

[20] शिक्षासूत्राणि ग्रन्थ,काशी,संवत् २००५।

विवरण, संवृत विवृत, घोष-अघोष, स्पष्ट आदि भेदों का वर्णन, पाठक के गुण-दोषों का वर्णन किया गया है।

अनुवाद

अनुबाद प्राचीन काल से चलता आया है परन्तु अनुवाद का महत्त्व वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से अत्यधिक बढ़ा है। इसका मुख्य कारण आधुनिक समय में हमारा आपसी सम्पर्क अत्यधिक बढ़ा है और भारतीय साहित्य के समेकित का इतिहास का अध्ययन लोकप्रिय हुआ है। सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन और अनुसंधान अनुवाद के विना सम्भव नहीं है। अनुवाद ने भारतीय साहित्य के अध्येताओं को एक-दूसरे के समीप लाने का सम्यक प्रयास किया है। अनुवाद मात्र एक साहित्यिक कार्य नहीं है अपितु प्रशासन, चिकित्सा, कला, संस्कृति, विज्ञान, विधि, प्रद्योगिकि, अनुसंधान, संचार, व्यवसाय, पत्रकारिता आदि क्षेत्रों में भी अनुवाद का महत्त्व है।

एक भाषा का किसी दूसरी भाषा में रूपान्तरण ही अनुवाद है। इस प्रकार अनुवादक का कार्य है, स्रोत भाषा में व्यक्त विचारों को लक्ष्य भाषा में व्यक्त करना है।[21]

अध्याय विभाजन

भूमिका

प्रथम अध्याय

वेदाङ्गों का परिचय, पाणिनीयशिक्षा की प्राचिनता एवं महत्व, शिक्षाग्रन्थ का महत्व, पाणिनि शिक्षा का भारतीय भाषा में अनुवाद, पूर्ववर्ती शोधकार्य का वर्णन किया जायेगा।

द्वितीय अध्यायः

पाणिनीयशिक्षा का श्लोक,अन्वय,ओडिआ अनुवाद किया जायेगा।

[21] अनुवाद विज्ञान

तृतीय अध्याय

अनुवाद का अर्थ एवं महत्व, अनुवाद के प्रभेद अनुवाद की परम्परा, अनुवाद में समस्या और समाधान, इन विषयों का वर्णन किया जायेगा।

प्रथम अध्याय

वेदाङ्गों में शिक्षा का स्थान तथा परम्परा

पाणिनि संस्कृत व्याकरण के सबसे बड़े विद्वान् थे। उनके ग्रन्थ का नाम अष्टाध्यायी है। अष्टाध्यायी में आठ अध्याय और चतु:सहस्र सूत्र है। पाणिनीय शिक्षा में छः वेदाङ्गों का वेद पुरुष के छः अंङ्गो के रुप में वर्णन किया गया है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द और निरूक्त - ये छ: वेदांग है।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्
तस्मात्साङ्कमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥[22]

1. वेदाङ्ग

1.1. शिक्षा

जिस शास्त्र में वर्ण,स्वर,मात्रा,वल,साम,तथा सन्तान-इन छःविषयों का उपदेश हो उसे शिक्षा कहते है।**वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा**[23] शिक्षा विषयों का निर्देश दिआ गया है- **वर्णः, स्वरः, मात्रा, वलम् , साम, सन्तानः, इत्युक्तःशिक्षाध्ययः**[24] शिक्षा वेद की घ्राणेन्द्रिय (नासिका) है। जिस प्रकार शरीर में नासिका को उन्नत स्थान प्राप्त है तथा इस इन्द्रिय का सम्बन्ध 'प्राण' के साथ है उसी प्रकार वेदाध्ययन में स्वरादि उच्चारण के द्वारा प्राणतत्त्व का सञ्चार करने के कारण शिक्षा वेद की नासिका है। प्रकृत पाणिनीय शिक्षा ग्रन्थ

---

[22] पाणिनीय शिक्षा.४१

[23] ऋग्वेदभाष्यभूमिका,पृ.३९।

[24] तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली श्लो.१/२

में भी “शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य”[25] के प्रतिपादन में प्रयुक्त 'तु' शब्द यह सूचित करता है कि शिक्षाशास्त्र किसी अन्य वेदाङ्ग से तुलनीय नहीं है क्योंकि श्वास-प्रश्वास के गतिशील रहने पर ही समस्त लोक जीवन धारण में समर्थ होता है। शिक्षाशास्त्रों का विधिवत् ज्ञान जहाँ वेद के स्वरूप की रक्षा करता हुआ ‘स्वर्गे लोके च कामधुक् भवति'[26] वचन को चरितार्थ करता है वहाँ इसका समुचित ज्ञान न होने से विरुद्ध स्वर का उच्चारण हो जाता है| वेद मन्त्र का पाठ यदि यथार्थ स्वर और वर्ण से हीन हो तो मिथ्या-प्रयुक्त होने के कारण वह, उस अभीष्ट अर्थ का बोध नहीं करवाता; इतना ही नहीं वह वाक् रूपी वज्र बनकर यजमान के लिए अनिष्टकारक बन जाता है। यथा- ‘इन्द्रशत्रुः' पद स्वर भेदजनित अपराध के कारण यजमान के लिए अनिष्टकारी हो गया-

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥[27]

1.2. कल्प

विभिन्न वैदिक शाखाओं के ब्राह्मण-ग्रन्थों में विहित कर्मो का व्यवस्थित वर्णन करने वाला वेदाङ्ग कल्प कहा गया है।ब्राह्मणों के विधि-वाक्यों में कर्मों का निरुपण है। कर्म श्रौत्र तथा गृहकर्म के रुप में थे।इनके अतिरिक्त मानव के आचार-व्यवहार से सम्बद्ध धर्म काभी इनमे विवेचन था। सभी कर्म कल्प की परिधि में रखे गये है। **कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्।**[28] वेदों में विहित कर्म इतने व्यापक और विच्छिन्न थे कि

---

[25] पाणिनीय शिक्षा.४१

[26] व्याकरण महाभाष्य

[27] पाणिनीयशिक्षा श्लोक ५२

[28] विष्णुमित्र ने कल्प् का लक्षण दिया

उन्हें संक्षिप्त और व्यवस्थित करके कल्प-ग्रन्थों में सूत्रवद्ध किया गया।सूत्र के रुप में होने के कारण पाश्चात्य इतिहासकार कल्पों का विवरण सूत्रसाहित्य के अन्तर्गत करते हैं। कल्प का विवरण स्वतन्त्र अध्याय का विषय है। इसमें सभी वेदाङ्गों से अधिक साहित्य का विकास हुआ है। कल्प के चार भेद है-

१.श्रौतसूत्र

२.गृह्यसूत्र

३.धर्मसूत्र

४.शुल्वसूत्र।[29]

1.3. व्याकरण

व्याकरण शास्त्र के विवेचन को दो भागों में बाँटा जा सकता है-१.लौकिक व्याकरण या संस्कृत व्याकरण २.वैदिक व्याकरण।संस्कृत व्याकरण में पाणिनि आदि आचार्य हैं तथा अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि ग्रन्थ हैं। वैदिक व्याकरण में प्रातिशाख्य ग्रन्थ हैं। व्याक्रियन्ते विवेच्यन्ते शद्वा अनेनेति व्याकरण अर्थात जिस शास्त्र के द्वारा शद्वों के प्रकृति प्रत्यय का विवेचन किया जाता है,उसे व्याकरण कहते हैं। इसमें यह विवेचन किया जाता है कि शद्व कैसे बनता है। इसमें क्या प्रकृति है और क्या प्रत्यय लगा है।तदनुसार शद्व का अर्थ निश्चित किया जाता है।ऋग्वेद के एक मंत्र का व्याकरण परक अर्थ किया है-

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश।[30]

---

[29] संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ ९०

[30] ऋग्.१९.७७

व्याकरण का मुख्य प्रयोजन **रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजन**[31] इससे प्रकृति और प्रत्यय आदि के योग से शब्दों की सिद्धि और उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरो की स्थिति का बोध होता है।[32]

1.4. निरुक्त

निरुक्त का अर्थ है- निर्वचन,व्युत्पत्ति। शद्व के मूलरूप का ज्ञान कराना, शद्व में प्रकृति-प्रत्यय का स्पष्टीकरण,धात्वर्थ और प्रत्ययार्थ का विशदीकरण,समानार्थक और नानार्थक शद्वों का विवेचन आदि कार्य निरुक्त का है। इसके लिए Etymology शद्व प्रयोग है। जिसका अर्थ है शद्व की उत्पत्ति और उसके विकास की प्रक्रिया का अध्ययन। इसे ही शद्व-व्युत्पत्ति-शास्त्र भी कहा जाता है।[33] वेदों मे जिन शब्दों का प्रयोग जिन-जिन अर्थों मे किया गया है, उनके उन-उन अर्थों का निश्चयात्मक रूप से उल्लेख निरूक्त मे किया गया है।

1.5. ज्योतिष

इससे वैदिक यज्ञों और अनुष्ठानों का समय ज्ञात होता है। वेदों में विहित कर्मानुष्टानु का समुचित काल जानने के लिए वेदाङ्ग के रुप में ज्योतिष-शास्त्र का उपयोग होता है। लगध रचित वेदाङ्गज्योतिष नामक ग्रन्थ इसका प्रतिनिधि ग्रन्थ है, जिसका समय शंकर बालकृष्ण दीक्षित्त ने १४०० ई.पू सिद्धि किया है। इसके तृत्तीय श्लोक में ज्योतिष की उपयोगिता इस प्रकार बतायी गयी है।

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।

---

[31] महाभाष्य आह्निक ।

[32] वैदिक साहित्यएवं संस्कृति पृ. १९३-१९५।

[33] वैदिक साहित्यएवं संस्कृति पृ. २०३।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्॥[34]

वेदाङ्गज्योतिष के दो पाठ मिलते है-आर्चज्योतिष और याजुष ज्योतिष।क्रमशः छत्तीस तथा तेंतालिस श्लोक है।

1.6. छन्द

छन्दस् शद्व छद् धातु से बना है। यास्क ने निरुक्त में छन्दस् का निर्वचन दिया है। **छन्दांसि छादनात्**[35] अर्थात छन्द भावों को आछादित करके उसे समष्टिरुप प्रदान करता है। कात्यायन ने छन्द का लक्षण दिया है- **यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः**[36] जिसमें वर्णों या अक्षरों की संख्या निर्धारित होती है, उसे छन्द कहते हैं। अक्षरों की संख्या के आधार पर ही छन्दों के नाम रखे गए हैं।

1.7. छन्दोविषयक ग्रन्थः

वैदिक छन्दों से संबद्ध सामग्री इन ग्रन्थों में प्राप्त होती है। ऋक् प्रातिशाख्य, शांख्यायन श्रौतसूत्र, सामवेद का निदानसूत्र, पिंगल प्रणीत छन्दःसूत्र, कात्यायन कृत दो छन्दोअनुक्रमणियाँ।[37] ।

स्वरवर्णापराधपरिहाराय शिक्षाग्रन्थोऽपेक्षितः।[38]

इन स्वर वर्णोच्चारण के लिए हृदय, कण्ठ और शिर- ये तीन स्थान हैं। इन तीनों को 'सवन' भी कहते हैं। उरोभाग में निम्न स्वर से किया गया उच्चारण प्रातः पवन कहा जाता है। कण्ठ स्थान में मध्यम स्वर से सम्बन्धित उच्चारण को 'माध्यन्दिन सवन' कहते हैं तथा शिरोभाग में

---

[34] संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. ९५

[35] निरुक्त ७.१२।

[36] सर्वानुक्रमणी १२.६

[37] वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ. १९९

[38] ऋग्वेदभाष्यभूमिका सायणाचार्य

उच्च स्तर से किया गया उच्चारण तृतीय सवन कहलाता है। अधरोत्तर भेद से सप्त स्वरात्मक साम के भी पूर्वोक्त तीन स्थान ही हैं। उरोभाग, कण्ठ तथा शिर- ये सात स्वरों के विचरण स्थान है। किन्तु उरः स्थल में मन्द्र तथा अतिस्वार की सही अभिव्यक्ति न होने के कारण उसे सातों स्वरों, कहा गया है।

2. शिक्षा की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

शिक्षा का व्युत्पत्ति शद्व वताते है। शिक्षा व्युत्पत्ति के आधार को शिक्ष-अभ्यासे धातु से गुरोश्च हलः सूत्र से अ प्रत्यय तथा स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् प्रत्यय करके शिक्षा शब्द निष्पन्न होता है। शक्लृ-शक्तौ धातु से शक्तुमिच्छा शिक्षा व्युत्पत्ति प्रदर्शित करने पर सन् प्रत्ययान्त शक् धातु से इस्, तथा अ, प्रत्ययात् से अ, प्रत्यय करके शिक्षा शब्द निष्पन्न होता है।शिक्षा वेदाङ्ग के सन्दर्भ में शिक्ष्यते यया सा शिक्षा व्युत्पत्ति अधिक सारगर्भित है। ऋग्वेद-भाष्य-भूमिका आचार्य सायण उक्ति है-**स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते सा शिक्षा**।[39] अर्थात् उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों तथा वर्णोच्चारण की विधि जिस शास्त्र में सिखाई जाती है- उसे शिक्षा कहते हैं। पण्डित गोपालशास्त्री नेने महोदय ने वाराणसी से प्रकाशित पाणिनीय शिक्षा (पञ्जिकाभाष्य सहित) के प्रास्ताविक में शिक्षा को अति स्पष्ट रूप से परिभाषित करते हुए लिखा है-

शिक्षानाम-उदात्तानुदात्तस्वरितप्रचयाख्यस्वर-ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतानुनासिकाननु।

नासिकादिभेदभिन्नवर्णसमुदायात्मक पदोच्चारणप्रकारबोधको ग्रन्थविशेषः।[40] उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और प्रचय नामक स्वर तथा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अनुनासिक,अननुनासिक, भेदों से युक्त, अकारादि वर्णसमुदाय रूप पदों के उच्चारण की विधि का बोधक ग्रन्थ है।

---

[39] ऋग्वेदभाष्य भूमिका

[40] पाणिनीय-शिक्षा

शिक्षाशास्त्र की प्राचीनता

शिक्षाशास्त्र महत्त्वपूर्ण वेदाङ्ग के रूप में प्रतिष्ठित है। वेदमन्त्रों के उच्चारण आदि के समय प्राचीन ऋषि, अपने शिष्यों को स्वयं उच्चारण स्वरों का प्रदर्शित करते है। शिक्षा का उपदेश देते थे। निरुक्तकार यास्क स्पष्ट लिखते है-

'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन सम्प्रादुः, उपेंदेशाय ग्लायन्तोऽपरे बिल्मग्रहणायेम ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च।[41]

इसके अतिरिक्त शिक्षाशास्त्र की प्राचीनता को प्रमाणित करने वाले विषयों के सन्दर्भ उपनिषद् एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध हैं-

ओकारं पृच्छामः। किं स्थानानुप्रदानकरणं शिक्षुकाः किमुच्चारयन्ति। किं स्थानमित्युभावोष्ठौ। द्वितीयस्पृष्टकरणस्थितिश्च।षडङ्गविदस्तत्तथाधीमहे।[42]

मुण्डकोपनिषद् में उल्लेख है-

तत्रापरा-ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः, शिक्षा कल्पोव्याकरणंनिरुक्तंछन्दोज्योतिषमिति।[43]

तैत्तिरीयोपनिषद् का प्रथम अध्याय शीक्षाध्याय में प्रथित है-

अथ शीक्षां व्याख्यास्यामः –वर्णः स्वरः मात्रा बलं साम-सन्तान इत्युक्तः शीक्षाध्यायः।[44]

शिक्षा-वेदाङ्ग के प्रवक्ता

ब्रह्मा संस्कृत वाङ्गमय में समस्त विद्याओं के आदि प्रवक्ता है। ब्रह्मा का नाम अत्यन्त गौरव के साथ लिया जाता है। अतएव ऋकतन्त्र में विद्या की परम्परा का वर्णन करते हुए लिखा गया है-

---

41 निरुक्त १/६

42 गोपथब्राह्मण १/२४/१/७

43 मुण्डकोपनिषद् १/५

44 ते. उप. १/२

ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्रायेन्द्रो।

भरद्वाजाय, भरद्वाजः ऋषिभ्यः, ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः॥[45]

अर्थात् अक्षरसमाम्नाय/वर्णमाला का उपदेश सर्वप्रथम ब्रह्मा ने बृहस्पति को दिया बृहस्पति ने इन्द्र को, इन्द्र ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने ऋषियों को तथा ऋषियों ने ब्राह्मणों को अक्षरसमाम्नाय–शिक्षा वेदाङ्ग का मौलिक एवं प्रमुख अङ्ग है। इस प्रकार से यह ज्ञात होता है कि शिक्षा वेदाङ्ग के आदि प्रवर्तक ब्रह्मा हैं।

बृहस्पति-

शिक्षा वेदाङ्ग के द्वितीय प्रवक्ता बृहस्पति अङ्गिरा के पुत्र थे। अत एव इनका आंगिरस के नाम से भी अभिधान किया गया है। **बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहितः।**[46] वचन के अनुसार ये देवों के पुरोहित थे। इन्होंने वेदाङ्गों का प्रवचन किया है-**वेदाङ्गानि बृहस्पतिः।**[47]

इन्द्र-

व्याकरण महाभाष्यकार पतञ्जलिमुनि ने श्रुति वचन के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि बृहस्पति ने इन्द्र को प्रतिपदपाठ पद्धति से शब्दों का उपदेश दिया था। बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच ।[48] अतः इन्द्र, बृहस्पति के शिष्य थे। इन्होंने प्रतिपद पाठविधि की अनन्तता दुरूहता का अनुभव करके प्रकृति-प्रत्यय संविभागपूर्वक शब्दविद्या के अध्ययन-अध्यापन की रीति विकसित की थी- देवा इन्द्रमब्रुवन्-

---

45 ऋक्तन्त्र १/४

46 ऐतरेय ब्राह्मण ८/ २६

47 महाभा. शा. प. ११२-३२

48 व्याकरणमंहाभाष्य १/११-१

इमां नो वाचं व्याकुर्विति। **तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्।।**[49] इन्द्र के द्वारा प्रणीत व्याकरणशास्त्र सम्प्रति अनुपलब्ध है।

भरद्वाज-

आचार्य बृहस्पति के पुत्र का नाम भरद्वाज था।वह देवताओं के पुरोहित थे। काशिकावृत्ति के उल्लेखानुसार इनके २१ पुत्र थे -एकविंशति भारद्वाजम्। किन्तु ऋग्वेद की सर्वानुक्रमणी में इनकी एकादश सन्तानों का नामोल्लेख प्राप्त होता है।भरद्वाज ने इन्द्र से अक्षरसमाम्नय शिक्षा वेदाङ्ग की विधिवत शिक्षा ग्रहण की थी। इस तथ्य का उल्लेख हमें ऋकतन्त्र में प्राप्त होता है। ऐतरेय आरण्यक के अनुसार यह सुस्पष्ट होता है कि इन्द्र ने घोषवत तथा ऊष्म वर्णो का उपदेश किया था।

शिक्षा ग्रन्थ- ऋग्वेदीय शिक्षाग्रन्थ-

1. शैशिरीय शिक्षा- ऋग्वेद की शैशिरीय शाखा से सम्बन्धित यह शिक्षा ग्रन्थ **360** कारिकाओं से समन्वित है। इस शिक्षा ग्रन्थ का प्रतिपाद्य वर्णोच्चारणस्थान, करण, प्रयत्न आदि हैं। इसमें वेदमन्त्रों के अध्येता के गुण-दोषों का विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है।

2. शौनकीय शिक्षा- कारिका रूप में निबद्ध इस शिक्षाग्रन्थ में स्वरवर्णो एवं उदात्त आदि स्वरों, उच्चारणप्रक्रिया से सम्बद्ध स्थान प्रयत्न करण तथा वर्णोच्चारण से सम्बन्धित मात्रा काल आदि का भी विवेचन किया गया है। विवृत्ति, स्वरभक्ति, यम एवं रङ्ग आदि के सम्बन्ध में यहाँ सोदाहरण विचार किया गया है।

३.**स्वरव्यञ्जन शिक्षा**- कारिका रूप में निबद्ध इस शिक्षाग्रन्थ में अक्षरसमाम्नाय के अन्तर्गत परिगणित स्वर एवं व्यञ्जन वर्णो का भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया गया है। इसमें

---

[49] तैत्तिरीय संहिता

ऋग्वेद प्रातिशाख्य के नियमों के सोदाहरण विवेचन से उसका परवर्ती होना जान पड़ता है। कतिपय आचार्यों के अनुसार यह ग्रन्थ पाणिनि से भी परवर्ती है।

4. शमान शिक्षा- सूत्रशैली में निबद्ध इस ग्रन्थ में ऋग्वेद संहिता के विसर्जनीय प्रकरण से सम्बद्ध स्थलों का निर्देश किया गया है।

यजुर्वेदीय शिक्षाग्रन्थ-

वेदलक्षणानुक्रमणिका में कृष्ण यजुर्वेद की नव प्रधान शिक्षाओं तथा तीन उपशिक्षाओं का कथन किया गया है-

भारद्वाजव्यासश्म्भुपाणिनिकौहलीयकम्। बौधायनो वसिष्ठश्च वाल्मीकिर्हरितं नव॥

सर्वसम्मतमारण्यं तथा सिद्धान्तमेव च। उपशिक्षा इमे प्रोक्ता लक्षण्ज्ञानकोविदैः॥[50]

किन्तु व्यासशिक्षा ग्रन्थ के भाष्यकार ब्रह्म जी राजा घनपाठी के द्वारा सर्वलक्षण-मञ्जरीकार की एक कारीका उद्धृत की गयी है। जिसमें कृष्णयजुर्वेद शिक्षाओं के अन्तर्गत व्यासशिक्षा, लक्ष्मीशिक्षा, भारद्वाजशिक्षा, आरण्यकशिक्षा, शम्भुशिक्षा, आपिशलिशिक्षा, पाणिनीयशिक्षा, कौहलीयशिक्षा तथा वासिष्ठीशिक्षा को समाहित किया गया है। जो इस प्रकार हैं-

१.भारद्वाजशिक्षा-

चतुर्वेदाध्यायी भारद्वाज ने १३० कारिकाओं में वर्णों के सम्बन्ध में शङ्काओं का समाधान प्रस्तुत किया है। विक्रम से तीन हजार वर्ष पूर्व विद्यमान भारद्वाज के अनेक मत कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी दिखाई पडते हैं जिहनें टीकाकारों ने द्रोण भारद्वाज का मत बताया है।

---

[50] वेदलक्षणानुक्रमणिका ५-६

२.**व्यासशिक्षा-**

महर्षि व्यास के द्वारा अठ्ठाईस प्रकरणों में उपनिबद्ध इस शिक्षाग्रन्थ है। प्रथम संस्करण में संज्ञा प्रकरण से सुरु करके अट्ठाईस प्रकरण में वेदमन्त्रों के यथाविधि उच्चारण से सम्बन्धित फल का निरूपण किया गया है।

३.**शम्भुशिक्षा**- क्रमावसानकारिका नामक शिक्षाग्रन्थ के रचनाकार शम्भुमिश्र ने यजुर्वेद से सम्बन्धित मन्त्रों के क्रमावसान के विषय में विशद एवं स्पष्ट प्रतिपादन किया है। डॉ. कीलहार्न के अनुसार यह ग्रन्थ पाणिनीय शिक्षा का ही रूपान्तरण है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के भाष्यकार गार्यगोपालयज्वा तथा सोमयार्य ने अपने भाष्यग्रन्थों में इस शिक्षा का उल्लेख किया है किन्तु दुर्भाग्यश यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

४. **कौहलीय शिक्षा**- ७९ कारिकाओं में उपनिबद्ध इस शिक्षाग्रन्थ में वाणी के साथ हस्तचालन द्वारा स्वर प्रदर्शन का निर्देश दिया गया है। प्रकृत ग्रन्थ का वर्ण्य विषय व्यासशिक्षा के सदृश ही है।

५.**बौधायन शिक्षा**-यह शिक्षाग्रन्थ अनुपलब्ध है किन्तु वेदलक्षणानुक्रमणी में इसका उल्लेख मिलता है।

६.**वासिष्ठी शिक्षा**- अद्यावधि अप्रकाशित इस शिक्षाग्रन्थ की एक कारिका को तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के भाष्यकार गार्यगोपालयज्वा ने उद्धृत किया है।

७.**वाल्मीकि एवं हारीत शिक्षा-** इन दोनों ही शिक्षाओं का उल्लेख तैत्तिरीय प्रातिशाख्य तथा वेदलक्षणानुक्रमणी में किया गया है तथापि यह पाण्डुलिपि अनुपलब्ध है।

८.**आरण्यशिक्षा**- प्रकृत शिक्षा के अन्तर्गत मुख्य रूप से उदात्त आदि स्वरों का वर्णन है। इसमें वर्ण्य प्रतिपाद्यविषयों में गाम्भीर्य का प्रतिपादन करते हुए स्वयं को समुद्रमन्थन से निःसृत अमृततुल्य कहा गया है-

क्षितिसुरगणहेतेहेतेरितदारण्यशिक्षामृतमिवनवशिक्षावारिधेरुद्धरामि।

१.याज्ञवल्क्यशिक्षा–

कारिकारूप में उपनिबद्ध इस शिक्षाग्रन्थ के प्रवक्ता यावल्क्य के सम्बन्ध में शतपथब्राह्मण, शांखायन, आरण्यक तथा पुराणों में अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण इन्हें विश्वामित्र गोत्रोत्पन्न मानते हैं। किन्तु मस्त्य पुराण इन्हें वसिष्ठ गोत्रीय कहता है। बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार कात्यायनी मैत्रेयी इनकी दो पत्नियां थीं। कात्यायन याज्ञवल्क्य के पुत्र थे जो पारस्कर नाम से भी प्रसिद्ध थे। याज्ञवल्क्य के दो विद्यागुरु थे।शाकल्य तथा वैशम्पायन जिनमें इन्हों शाकल्य से ऋग्वेद का तथा वैशम्पायन से यजुर्वेद का अध्ययन किया था।[51]

प्रकृत शिक्षाग्रन्थ-

कारिकाओं से संवलित होकर भी यह शिक्षाग्रन्थ गद्यात्मक भागों से भी युक्त है। जो पूर्वार्द्ध एवम् उत्तरार्द्ध दो भागों में व्यवस्थित है। इनमें पूर्वार्द्ध में १२ तथा उत्तरार्द्ध में १२१ कारिकायें हैं। प्रारम्भ में उदात्त अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों के विवेचन के साथ उनके देवता, वर्ण, स्थान तथा गोत्र का भी वर्णन किया गया है।

वासिष्ठी शिक्षा-

वसिष्ठ ऋषि कृत गद्य रूप में उपनिबद्ध इस शिक्षाग्रन्थ में शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता से सम्बन्धित ऋचाओँ और यजुषों का विधान किया गया है। चालीस खण्डों में विभक्त इस ग्रन्थ को सर्वानुक्रमणी ग्रन्थ का अनुसरण करने वाला बताया गया है-

अथ शिक्षां प्रवक्षामि वासिष्ठस्य मतं यथा ।
सर्वानुक्रममुद्धृत्य ऋग्यजुषोस्तु लक्षणम्॥[52]

---

[51] शिक्षावल्ली नामक टीका।

[52] वासिष्ठी शिक्षा

कात्यायनी शिक्षा-

संस्कृत वाङ्मय में अनेक कात्यायन हुए है। वार्तिककार कात्यायन अधिक ख्यातिप्राप्त है। सम्प्रति कात्यायनी शिक्षा एवं स्वरभक्तिलक्षण शिक्षा कात्यायन के नाम से प्राप्त होती हैं। कात्यायन शिक्षा में स्वरित वर्ण के विषय में प्रमुखता से विचार प्रस्तुत किये गये हैं। तथा स्वरभक्तिलक्षण शिक्षा में जात्यादि स्वरों के सम्बन्ध में विशिष्ट प्रतिपादन किया गया है।

पाराशरी शिक्षा-

पाराशर के नाम से पाराशरी शिक्षा नामक ग्रन्थ उपलब्ध है। सम्भव है कि पराशर ऋषि ने भी शिक्षा सम्बन्धी कुछ विशिष्ट उपदेश किये है। जिनको आधार बनाकर किसी अन्य विद्वान् ने पाराशर मत के अनुरूप यह पाराशरी शिक्षा नामक ग्रन्थ लिखा हो। इस शिक्षा ग्रन्थ में 160 श्लोक हैं।

माण्डवी शिक्षा-

माण्डवी शिक्षा नामक ग्रन्थ के आधार पर ज्ञात होता है कि माण्डवी ने भी शिक्षा विषयक उपदेश किया होगा किन्तु यह रचना आधुनिक प्रतीत होती है। माण्डवी, संहिताओं के पदकार के रूप में प्रतिष्ठित थे- ऐसे सङ्केत प्राप्त होते हैं।

अमोघानन्दिनी शिक्षा-

१३० कारिकाओं में ग्रथित इस शिक्षाग्रन्थ है। इसमें सर्वाधिक विशेष विधान एकमात्रिक ह्रस्व स्वर वर्णों के लिए क्षिप्र संज्ञा का प्रयोग है ग्रन्थ के अन्त में शुद्ध उच्चारण के महत्त्व, सम्प्रदायानुयायी होना श्रेष्ठ बताया गया है।

माध्यन्दिनशिक्षा-

माध्यन्दिन शिक्षा नामक एक ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध है। यह माध्यन्दिनी संहिता के उच्चारण स्वरादि से सम्बन्धित है। प्रातिशाख्यग्रन्थों के आधार पर विरचित इस शिक्षा में वर्ण,

वर्णस्थान, प्रयत्न, स्वरभक्ति, जात्यादि अष्ट स्वर, वर्णों के देवता, उदात्तादि स्वरों के देवता, ऋषि आदि का विशद वर्णन प्राप्त होता है।

केशवी शिक्षा-

आचार्य केशव के नाम से गद्यात्मक एवं पद्यात्मक दो शिक्षा उपलब्ध होते हैं। इस शिक्षा ग्रन्थ की रचना प्रतिज्ञा सूत्र नामक ग्रन्थ के आधार पर है। पद्यात्मक केशवी शिक्षा में २१ श्लोक हैं।

मल्लशर्म शिक्षा- पैंसठ श्लोकों में ग्रथित इस शिक्षाग्रन्थ में हस्तस्वर प्रक्रिया विधान के अनन्तर वेदाध्ययन के प्रारम्भ तथा अन्त में प्रणव रूप ओङ्कार के उच्चारण की चर्चा की गयी है। **षोडशश्लोकी शिक्षा-**

सोलह कारिकाओं में उपनिबद्ध इस शिक्षाग्रन्थ में वर्णसंख्यानिर्देश है। इस शिक्षा में अक्षरसमाम्नाय को पाणिनीय सूत्रों के आधार पर व्यवस्थित किया गया है।

अवसाननिर्णयशिक्षा-

अनन्तदेवकृत गद्यात्मक इस शिक्षाग्रन्थ को चौदह खण्डों में विभक्त किया गया है।

स्वरभक्तिलक्षणपरिशिष्टशिक्षा-

बयालीस कारिकाओं वाले इस शिक्षाग्रन्थ है। इसमे स्वरित के भेद, लक्षण, अनुस्वार का स्वरूप, प्रस्तुत किये गये हैं।

क्रमसन्धानशिक्षा-

गद्यात्मक प्रकृत शिक्षाग्रन्थ में क्रमसन्धानों का परिगणन किया गया है जो क्रमपाठ की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इस क्रमपाठ में पदपाठ एवं संहितापाठ का एक साथ रूप प्रस्तुत किया जाता है। **गलदृक् शिक्षा–**

शुक्ल यजुर्वेद में कतिपय ऐसी ऋचायें हैं जो गलत है। गलत् ऋचाओं को पद तता क्रमपाठ में छोड़ दिया जाता है जिन स्थलों पर इनका त्याग किया जाता है वे स्थल गलत् कहलाते हैं।

प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा-

तीन प्रकरण वाले इस शिक्षाग्रन्थ है।प्रकृत शिक्षाग्रन्थ में वेदाध्ययनविचार, स्वरविचार, सन्धिविचार नामक प्रकरण हैं।

यजर्विधानशिक्षा-

छः अध्यायों में विभक्त प्रकृत गद्यात्मक शिक्षाग्रन्थ है।इसमें विषयविवेचन की दृष्टि से अध्यायों का अवान्तर विभाग भी किया गया है। इस विभाग का नाम कण्डिका है।

स्वराङ्कशशिक्षा-

पच्चीस कारिकाओं में ग्रथित इस शिक्षाग्रन्थ में उदात, अनुदात, तथा स्वरित स्वरों के भेदोपभेद का निरूपण किया गया है। इस शिक्षा के रचयिता जयन्त स्वामी है ।

स्वराष्टकशिक्षा-

छः भागों में विभक्त इस शिक्षाग्रन्थ को सूत्रात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें मुख्य रूप से अक्षरसमाम्नाय, अच् सन्धि, स्वर, हस्तसञ्चालन, हलसन्धि विसर्गसन्धि सम्बन्द में विवेचन है।

सामवेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

नारदीयशिक्षा-

शिक्षा वेदाङ्ग के रूप में नारदीय शिक्षा अत्यन्त प्रसिद्ध है। नारद नामक किसी आचार्य ने इसका प्रणयन किया है। इसमें २३६ श्लोक है। नारदीय शिक्षा पर शिक्षाविवरण नामक एक संक्षिप्त टीका भी प्राप्त होती है, जो कि भट्ट शोभाकर पण्डित के द्वारा विरचित है।।

2. लोमशीशिक्षा-

लोमश प्रोक्त शिक्षा के आधार पर लोमशी शिक्षा प्राप्त होती है। मूलतः यह सामवेदीय शिक्षा है। लोमशी शिक्षा के अवसान में प्राप्त श्लोक द्वयी से ज्ञात होता है कि गौतमी शिक्षा एवं लोमशी शिक्षा का प्रणयन पण्डित युगल किशोर पाठक ने वि. सं. १९४९ में किया था।

गौतमी शिक्षा- गौतम प्रणीत गौतमी शिक्षा सम्प्रति उपलब्ध है । गौतम ऋषि का स्मरण महाभाष्यकार पतञ्जलि ने आपिशलि एवं पाणिनि के साथ किया है[53] यहाँ पाठान्तर में व्याडि का उल्लेख भी हुआ है।वस्तुतःगौतम प्राचीन ऋषि हैं। सम्भवतः उसी को आधार मानकर यह गौतमी शिक्षा रची गई हो।

अथर्ववेद से सम्बद्ध शिक्षायें

माण्डूकी शिक्षा-

मण्डूक शिक्षा अति प्राचीन हैं। ऐतरेय आरण्यक एवम् ऋक प्रातिशाख्य में मण्डूक ऋषि के पुत्र माण्डूकेय के मत का विमर्श सम्प्राप्त होता है। निश्चित रूप से ये पाणिनि से प्राचीन हैं। सन् १९२१ में पं. भगवद्दत्त ने अनेक हस्तलिखित पत्रों का सम्यग्दृष्टि से पठन एवं संशोधन करके अथर्ववेदीय 'माणकी शिक्षा' का सम्पादन किया था, जिसका प्रकाशन दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर से हुआ था।

ध्वनिविषयक शिक्षा-ग्रन्थ

पाणिनीय शिक्षा -

यह अत्यन्त प्रसिद्ध शिक्षाग्रन्थ है। वैदिक और लौकिक दोनों के लिए उपयुक्त है। इसमें ६० श्लोक हैं। मुख्य विषय हैं वर्णो की संख्या, उच्चारण प्रक्रिया का ध्वनिशास्त्रीय वर्णन, स्थान और प्रयत्न का विवरण, संवृत-विवृत,घोष अघोष, स्पष्ट ईषत् स्पृष्ट आदि भेदों का वर्णन, पाठक के गुण-दोषों का वर्णन है।

भरद्वाज-शिक्षा –

इसमें पदों की शुद्धता तथा ध्वोनि भेद से उदात्त आदि स्वरों में भेद का वर्णन है ।

याज्ञवल्क्य-शिक्षा –

---

[53] आपिशलपाणिनीयगौतमीयाः -व्या.म.६/२/३६

इसमें २३२ लोक हैं । इसमें वैदिक स्वरों का विवेचन है । वर्णो के भेद, स्वरूप, परस्पर साम्य वैषम्य लोप, आगम, विकार, प्रकृतिभाव आदि का वर्णन है ।

प्रातिशाख्य-प्रदीप-शिक्षा –

इसमें स्वरवर्ण आदि की शिक्षा का विस्तृत विवेचन है । प्राचीन वैयाकरण के मतों का भी उल्लेख है ।

नारदीय शिक्षा –

सामवेद के स्वरों का विस्तृत विवेचन है ।।

अन्य कुछ मुख्य शिक्षा-ग्रन्थ ये हैं १. व्यास शिक्षा, २. वासिष्ठी शिक्षा, ३. कात्यायनी शिक्षा, ४, पाराशरी, शिक्षा, ५. माण्डव्य शिक्षा, ६, माध्यन्दिनी शिक्षा, ७, वर्णरत्न-प्रदीपिका, ८.केशवीशिक्षा, ९. स्वरांकन-शिक्षा, १०. स्वरभक्ति-लक्षणशिक्षा है।

इनके अतिरिक्त कुछ शिक्षा-सूत्र भी मिलते हैं। इनमें आपिशलि, पाणिनि और चन्द्रगोमी के शिक्षासूत्र प्रकाशित हैं । इनमें ध्वनि-विज्ञान **(Phonology)** से संबद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्य हैं। इनमें अक्षरों की उत्पत्ति, स्थान और प्रयत्न, बाह्य और आभ्यन्तर करण आदि का विवेचन है।[54]

परा-अपरा विद्या के विवेचन है-

विद्या

परा अपरा

[54] वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ १९२-१९३

(उपनिषद्/वेदान्त)

वेद	वेदाङ्ग
ऋक् यजुः साम अथर्व	
शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष	

पाणिनीय शिक्षा-

महर्षि पाणिनी द्वारा विरचित संस्कृत व्याकरणशास्त्र का महनीय ग्रन्थ अष्टाध्यायी है ।सम्पूर्ण जगत के वैयाकरणों एवं भाषाशास्त्रियों को चमत्कृत करता है। वर्णोच्चारण की शुद्धता के लिए महर्षि ने एक शिक्षाग्रन्थ की रचना भी की थी। प्रायः वह ग्रन्थ सूत्रात्मक ही था। पाणिनि मुनि के वर्णोच्चारण शिक्षा सम्बन्धी उपदेशों तथा सूत्रों को आत्मसात् करके उनके अनुज आचार्य पिङ्गल ने पाणिनीय शिक्षा की रचना की है। जिसे कुछ विद्वान् पाणिनि विरचित मानते हैं। श्लोकात्मक यह पाणिनीय शिक्षा बहुत प्रचलित हुई तथा मूल सूत्रात्मक शिक्षा लुप्त हो गई थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लुप्तप्राय सूत्रात्मक शिक्षा को विच्छिन्न एवं त्रुटित रूप में प्राप्त कर पुनरुद्धारपूर्वक प्रकाशित किया था। वर्तमान में सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त पाणिनीय शिक्षा के आचार्य पिङ्गल द्वारा श्लोक रूप में विरचित होने के प्रमाण हैं। उनमें काशी से प्रकाशित पाणिनीय शिक्षा की प्राचीन व्याख्या शिक्षाप्रकाश के प्रारम्भ में ही लिखा है-

ज्येष्ठभातृभिर्विहिते व्याकरणेऽनुजस्तत्र भगवान् पिङ्गलाचार्यस्तन्मतमनुभाव्य शिक्षा वक्तुं प्रतिजानीते।अथ शिक्षामिति।[55]

इसके अतिरिक्त इस शिक्षाग्रन्थ को पाणिनिकृत मानने पर इसमें प्राप्त होने वाले निम्न श्लोकों की भी सङ्गति नहीं होती है-

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।

कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं, तस्मै पाणिनये नमः।।

[55] शिक्षाप्रकाश ग्रन्थ

येन धौता गिरः पुंसां, विमलैः शब्दवारिभिः।

तमश्चाज्ञानजं भिन्नं, तस्मै पाणिनये नमः।।

अज्ञानान्धस्य लोकस्य, ज्ञानाञ्जनशलाकया।

चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै पाणिनये नमः।।[56]

आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने महिम्न स्तोत्र की टीका में पाणिनीय शिक्षा को पाणिनिमुनि के द्वारा ही विरचित माना है- तत्र सर्व वेदसाधारणी शिक्षा 'अथ शिक्षा प्रवक्ष्यामि' इत्यादि नवखण्डात्मिका पाणिनिना प्रकाशिता। [57]

शङ्के सम्प्रति निर्विशङ्कमधुना, स्वाराज्यसौख्यं वहन्,

नेन्द्रः सान्द्रजपः स्थितेषु कथमप्युद्वेगमभ्येष्यति।

यद्वाचस्पतिनिर्मितमित - व्याख्यानमात्रस्फुटत्,

वेदान्तार्थविवेकवञ्चितभवाः स्वर्गेऽप्यमी निस्पृहाः ॥[58]

3. पाणिनि का परिचय

संस्कृत भाषा को अद्‌भुत व्याकरण का उपहार देनेवाले पाणिनी का जन्म शालातुरग्राम में हुआ था।इसलिए पतञ्जलि ने इन्हें प्रायः शालतूरीय कहा है।इनकी माता का नाम दाक्षी था।अतः दाक्षीपुत्र भी कहे गये हैं।कथासरितसागर के अनुसार ये वर्ष नामक आचार्य के शिष्य थे। पाणिनीकाल ५००ई.पू में अधिकसंख्यक विद्वानों ने माना है ।[59] विश्व की भाषाओं में संस्कृत की सर्वप्राचीनता के साथ संस्कृत व्याकरण का महत्त्व भी सर्वमान्य है। व्याकरण शास्त्र के इतिहास में संस्कृत भाषा को परिष्कृत करने में पाणिनीय व्याकरण का नाम

---

[56] पाणिनीय-शिक्षा

[57] शिव महिम्नस्तोत्र, मधुसूदनी टीका, पृ. २४

[58] आ. ४ पा.१, श्लोक-२

[59] संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. ५५९

अविस्मरणीय रहेगा। यद्यपि पाणिनि से पूर्व अनेक आचार्यों ने इस संदर्भ में अपना-अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया है किन्तु उनकी कृतियाँ सर्वाङ्गपूर्ण न होने से अपना प्रभाव नहीं छोड सकीं। अनेकों शताब्दियाँ व्यतीत हो गयी, फिर भी पाणिनि के प्रकाश में आज भी देववाणी का स्वरूप जन-साधारण के हृदय को आन्दोलित करता चला आ रहा है। यह परम्परा अनन्त काल तक संस्कृत जगत् को ज्योतिर्मय करती हुई सदैवविद्यमान रहेगी।

4. पाणिनीयशिक्षा की संरचना

पाणिनीयशिक्षा दो प्रकार के पाठ उपलब्ध है। १.सुत्रात्मक २.श्लोकात्मक। इनके भी दो-दो पाठ लघु और वृद्ध प्राप्त होता है। श्लोकात्मिका शिक्षा के लघुपाठ में ३५ श्लोक तथा वृद्धपाठ में ६० श्लोक है। वेबर ने लघुपाठ को यजुष पाठ और वृद्धपाठ को आर्च अर्थात ऋग्वेदीय पाठ मानते है। सुत्रात्मक शिक्षा के लघुपाठ ७७ सुत्र है। महर्षिदयानन्द सरस्वती ने इस पाठ को "वर्णोच्चारण शिक्षा" नाम से प्रकाशित कराया था। सुत्रात्मिका शिक्षा के वृद्ध पाठ मे १२० सुत्र है।[60]

पाणिनीयशिक्षा

१.सूत्रात्मक — लघु(७७) वृद्ध(१२०)

२.श्लोकात्मक — लघु(३५) वृद्ध(६०)

आजकल पाणिनीयशिक्षा में ११ खण्ड वताए जाते है। वीरमित्रोदय के परिभाषाप्रकाश में यह शिक्षा पञ्चखण्डात्मिका वताई गई है।[61] मधुसुदन सरस्वती ने यह शिक्षा नवखण्डात्मका वताया है।[62] पाणिनीयशिक्षा षष्टिपद्यात्मक श्लोक विशिष्ट ग्रन्थ है।[63]

---

60 पाणिनीयशिक्षा,सोमलेखा,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली, (पृ ६-७)

61 वाराणसी संस्करण (पृ-२०)

62 शिवमहिम्नस्तोत्र टीका (श्लो.७)

63 पाणिनीयशिक्षा,कौण्डिन्यायन शिवराज,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्टान,(पृ ३५)

5. प्रस्तुत क्षेत्र में विद्यमान पूर्ववर्ती शोधकार्य-

१. प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित कुछ शोध कार्य प्राप्त हुए है जो इस प्रकार है- मेहतो दामोदर, "पाणिनीयशिक्षा" २००५. प्रस्तुत शोध कार्य में भाषाके तात्विक एवं भाषिक विस्तृत शोधपूर्ण इन दोनों पक्षों पर विचार किया गया है। भाषविज्ञान की दृष्टि से प्रत्येक वाक्य की तरह उसके अवयवभूत पद के अन्तर्गत निहित अर्थतत्व तथा सम्बन्धतत्व पर विचार करते हुए कहा गया है अर्थतत्व वे तत्व है जो अभिव्यक्त भावों के सम्बन्ध को व्यवस्थित करते है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध-कार्य में भाषा के विविध दिग पर विचार किया गया है।

२. peter f.freund "paniniya siksha'' from N/A, 2008

प्रस्तुत शोध कार्य में पाणिनीय शिक्षा को मुक्ति मार्ग मानाजाता है। उसे सम्पूर्ण वर्णों उच्चारण स्थान निर्धारण वताया गया है। सभी शास्त्रों का समझना का मूल आधार है। सम्पूर्ण उच्चारण व्यावस्ता को नियन्त्रण करते है। इसे समग्र वर्ण का शुद्ध उच्चारण, शिक्षा प्रक्रिया को सूचना प्रदान किया था। समस्त वैदिक स्वर विज्ञान, पिच, अवधि, अभिव्यक्ति की जगह सुचना प्रदान किया थे।

३. कौण्डिन्य शिवराज "पाणिनीय शिक्षा" चौखम्बा विद्याभवन, बारणासी,

प्रस्तुत शोध-कार्य में वर्णों के पक्ष पर विचार किया गया है। वर्णों उच्चारण का सम्यक् ज्ञान ही शास्त्रार्थ समझना का ज्ञान है। व्याकरण का महत्व प्रतिपादन किया है। धातु, शद्व, प्रकृति, प्रत्यय, वाक्य, लिङ्गः, पद, अर्थ पर विचार किया गया है।

४. Somalekha, "paniniya siksha"chaukhamba publication, 2014.

प्रस्तुत शोध कार्य में प्राचिन तथा अर्वाचीन दोनों ही दृष्टिकोणों से वेदाध्ययन विचार किया गया है। वेदाङ्गों को प्रथम स्थान दिया गया है, मैक्समूलर आदि कुछ अन्य आचार्य का अर्थवाद तत्व को मानते है। इस शिक्षा ग्रन्थ में सूत्रपाठ अथवा श्लोकपाठ रुपे है।

५. Manmohan Ghosh, “paniniya siskha text and translation’’ V.K.Publishing House, Karol Bagh New Delhi, 1991.

प्रस्तुत शोध कार्य में भाषा के समस्त दृष्टि प्रति ध्यान दे कर इस शिक्षा को अनुवाद किया है। समत परम्परा को अध्ययन करके अपना विचार किया गया है, दयानन्द सरस्वती वर्णोच्चारण शिक्षा सम्बत १९३६ मे किया युधिष्टिर मिमांसक १९४९ प्रकाशित किया मनमोहन घोष ने दोनों याजुष और आर्च को स्वतन्त्र ही माना है, शिक्षापञ्जिका और शिक्षाप्रकाश में पूर्णपाठ साम्य नहीं है।

६. आचार्य कुलप्रकाशनम, “पाणिनीय शिक्षा” त्रिनयनाख्येन संस्कृत भाष्येण, चिन्तामणिनाम्ना हिन्दीभाषान्तरेण च विभूषिता अवतरणिकया परिशिष्टपञ्चकेनोपसंहारेण च समन्विता, भाष्यकृत अवस्थी बच्चुलाली ज्ञानोपाह्वःभाष्य-भाषान्तरकारःसम्पादकश्चःवालकृष्ण शर्मा, सह सम्पादकः सन्तोषः पाण्ड्या, प्रकाशकः श्रीनिवासरथःउज्जयिनीस्थ-कालिदास-अकादेमी-निदेशकः, विक्रमसंवत २०५०.

७.commentry

दुबे सत्यप्रकाश और पाण्डेय शम्भुदयाल,पाणिनीय शिक्षा, राजस्तानी ग्रन्थागार,जोधपुर, २००४.

श्रीमत्पाणिनिविरचिता शिक्षाः “पञ्जिका” भाव्यसहिता- **Pāṇīnīya śīkshā with paṇjikā bhashya**

नेने-गोपालशास्त्रिणा परिष्कृता ; सा च सुदामाशर्मणा संशोधिता,हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला, no. 10 चौखम्बा संस्कृत सीरिज़ आफिस, 1929 Other Title श्रीमत् पाणिनि विरचिता शिक्षा: पञ्जिका भाव्य सहिता Title Transcription,श्रीमत् पाणिनि विरचिता शिक्षा : पञ्जिका भाव्य सहिता Śrīmatpāṇiniviracitā Śikṣā: Pañjikā bhāṣyasahitā

7. भारतीय भाषा में पाणिनीयशिक्षा का अनुवाद

१. सन् १८५० में सज्जनलाल पाणिनीयशिक्षा को हिन्दि में वाराणसी से प्रकाशित किया है।

२. सन् १८४५ में वेवेर ने पाणिनीयशिक्षा को सानुवाद सम्पादित करके रोमान लिपि में प्रकाशित किया और ऋग्वेद से सम्बद्ध वताया है।

३. सन् १८५७ में वेचनराम त्रिपाठी पञ्जिकाख्यव्याख्यासहित पाणिनीय शिक्षा काशीस्थ राजकीय संस्कृत पाठशाला मे प्रकाशित किया था।

४. सन् १८९२ वेद षडङ्ग में भी पाणिनीयशिक्षा प्राप्त हुई थी।

५. १९२३ में पण्डित कनकलाल शर्मा मैथिल से संशोधित करके पाणिनीयशिक्षादिसंङ्ग्रह मे भी पञ्जैकाख्यव्याख्यासहित पाणिनीयशिक्षा वाराणसी से प्रकाशित हुआ है।

६. १८८९-१८९३ में युगलकिशोर पाठक के सम्पादकत्व में शिक्षासंङ्ग्रह वाराणसी मे मुद्रित हुई है।

७. सन् १९२६ में वेङ्कटेश्वरष्टीम् प्रेस से भी सिद्धान्तकौमुदी के परिशिष्ट रुपे प्राप्त हुआ है।

८. १९०९-१९३४ में (ऋग्वेदीय) शिक्षादिवेद षडङ्ग में भी यह पाठ मुद्रित हुई है।[64]

8. प्रस्तुत शोधकार्य का वैशिष्ट्य

उपर्युक्त शोध कार्यों से अनुवाद पक्षों की आवश्यक जानकारी तो अवश्य ही प्राप्त होती है, लेकिन ये शोध कार्य प्रस्तुत शोध कार्य से साक्षात् सम्बन्धित हैं। व्याकरण पक्ष पर अनेक शोध कार्य हुए हैं, किन्तु पाणिनीय शिक्षा का ओडिआ भाषा में अनुवाद-प्रविधि-गतसमस्या के प्रसंग में प्रायोगिक कार्य उपलब्ध नहीं है। पाणिनीय शिक्षा का ओडिआ भाषा में अनुवाद-प्रविधि- गतसमस्याएं के नियमों का तात्त्विक विश्लेषण के क्रम में प्रयोग सम्बन्धी विश्लेषण का

[64] पाणिनीयशिक्षा,कौण्डिन्यायन,शिवराज,चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठान.पृ ३५

यह प्रथम प्रयास है। प्रस्तुत शोध कार्य के द्वारा आचार्य पाणिनी प्रतिपादित भाषा की संरचना को समझकर पाणिनीय सूत्रों के माध्यम से अर्थ को स्पष्ट कर दार्शनिक, व्याकरण, साहित्य पक्ष को सरल से सरल रूप में जनसामान्य के समक्ष किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है- यही इस शोध कार्य को पूर्ववर्ती शोधकार्य से विशिष्ट करता है।

9. शोधप्रविधि

प्रस्तुत शोधकर्य में पाणिनीयशिक्षा ग्रन्थ का ओडिआ भाषा में अनुवाद करने के लिए विश्लेषणात्मक तुलनात्मक, आलोचनात्मक और विवेचनात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया जायेगा। एतदर्थ प्रथमत: इसका विभाजन अध्यायों में किया जायेगा। पुन: अध्यायों का विभाजन बिन्दुओं एवं उपविन्दुओं में किया जायेगा एवं प्रत्येक विन्दुओं तथा उपविन्दुओं का विवेचन भी अपेक्षित रहेगा, इस दृष्टि से यह पद्धति विवेचनात्मक होगी। इसी क्रम में पाणिनीय शिक्षा का विधिवत् अध्ययन करते हुए व्याकरण के सूत्रों से सम्बद्ध प्रसंगों का आहरण किया जायेगा। उनका विशेष अध्ययन करने के उपरान्त विषय के आधार पर अध्याय विभाजन के द्वारा, विभिन्न अध्यायों में तार्किक विश्लेषण के द्वारा अनुवाद पक्ष को प्रस्तुत किया जायेगा। इस क्रम में अनेक पुस्तकालयों तथा अन्तर्जालीय स्रोत की सहायता ली जायेगी।

द्वितीय अध्याय

पाणिनीयशिक्षा का ओडिया भाषा में अनुवाद

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा ।

शास्त्रानुपूर्वं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः ॥१॥

अन्वयः- अथ यथा पाणिनीयम् मतम् (तथा) शिक्षाम् प्रवक्ष्यामि । तत् लोकवेदयोः यथा उक्तम् (तथा) शास्त्रानुपूर्वम् विद्यात् ।

ଅନୁବାଦ-: ଏବେ ଠାରୁ ମୁଁ ପାଣିନୀଙ୍କ ମତକୁ ପ୍ରକାଶ କରିବାକୁ ଯାଉଛି | ଶିଷ୍ୟମାନେ ପାଣିନୀଙ୍କର ଏହି ମତକୁ ପୂର୍ବଶାସ୍ତ୍ର ମନେକରି ଅନୁଗମନ କରିଛନ୍ତି| ଏହାଦ୍ୱାରା ପାଣିନୀଙ୍କର ମତ ପ୍ରାମାଣିକତା ରୂପେ ସ୍ୱୀକାର କରାଯାଇଛି | ଏହିପରି ପାଣିନୀଙ୍କ ମତକୁ ପ୍ରମାଣିତ କରି ଅବିଚ୍ଛିନ୍ନ ଭାବରେ ସ୍ମୃତି ପରମ୍ପରାକୁ ଅନୁଗମନ କରାଯାଇଛି |୧

प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः।

पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ॥ २॥

अन्वयः- प्रसिद्धम् अपि अबुद्धिभिः अविज्ञातम् वाचः उच्चारणे विधिम् शब्दार्थम् पुनः व्यक्तीकरिष्यामि ।

ଅନୁବାଦ-: ଏହି ପାଣିନୀୟଶିକ୍ଷା ବିଦ୍ୱାନଙ୍କ ଠାରେ ପ୍ରସିଦ୍ଧ ହେଲେ ମଧ୍ୟ ମନ୍ଦବୁଦ୍ଧି ମଣିଷଙ୍କ ଠାରେ (ଜ୍ଞାନଶୂନ୍ୟ ମଣିଷ) ଅଜ୍ଞାତ| ଯଜ୍ଞବାଣୀ (ଯଜ୍ଞ କରାଗଲା ବେଳେ ଉଚ୍ଚାରଣ ହେଉଥିବା ବୈଦିକମନ୍ତ୍ର) ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ସମୟରେ ସ୍ଥାନ–କରଣ-ପ୍ରଯତ୍ନ ଆଦି ବିଶେଷ ରୂପେ ଯଜ୍ଞସମ୍ବନ୍ଧୀୟ ବୈଦିକ ଶବ୍ଦକୁ ରକ୍ଷା କରିବା ପାଇଁ କାରଣ ଗୁଡିକ ସ୍ପଷ୍ଟରୂପେ ବର୍ଣ୍ଣନା କରୁଛି |୨

त्रिषष्टिश्चतुःषटिर्वा वर्णा शम्भुमतेमताः ।

प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥ ३॥

ଅନ୍ୱୟଃ - ପ୍ରାକୃତେ ସଂସ୍କୃତେ ଚ ଅପି ସ୍ୱୟଂଭୁବା ସ୍ୱୟଂ ପ୍ରୋକ୍ତାଃ ବର୍ଣାଃ ସମ୍ଭବତଃ ତ୍ରିଷଷ୍ଟିଃ ବା ମତାଃ।

ଅନୁବାଦ-: ପ୍ରାକୃତ ଏବଂ ସଂସ୍କୃତ ଭାଷାରେ ବର୍ଣ୍ଣନା କରାଯାଇଛି ଯେ, ସ୍ୱୟଂ ବ୍ରହ୍ମା କହିଛନ୍ତି - ବର୍ଣ୍ଣ ସଂଖ୍ୟା୬୩[65] କିମ୍ବା ୬୪ ବୋଲି ମାନିଛନ୍ତି | ବର୍ଣ୍ଣ କହିଲେ କଣ ବୁଝ ? ପର ଶ୍ଲୋକ ରେ ବର୍ଣ୍ଣନା କରାଯାଇଛି |୩

ସ୍ୱରା ବିଂଶତିରେକଶ୍ଚ ସ୍ପର୍ଶାନାଂ ପଞ୍ଚବିଂଶତିଃ ।

ଯାଦୟଶ୍ଚ ସ୍ମୃତା ହ୍ୟଷ୍ଟୌ ଚତ୍ୱାରଶ୍ଚ ୟମାଃ ସ୍ମୃତାଃ ॥୪॥

ଅନ୍ୱୟଃ - ସ୍ୱରାଃ ବିଂଶତିଃ ଏକଃ ଚ, ସ୍ପର୍ଶାନାମ୍ ପଞ୍ଚବିଂଶତିଃ , ଯାଦୟଃ ଚ ଅଷ୍ଟୌ ହି ସ୍ମୃତାଃ

ଅନୁବାଦ-: ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣ ୨୧, ସ୍ପର୍ଶବର୍ଣ୍ଣ ୨୫, "ୟ" କାରାଦି (ଅନ୍ତସ୍ଥା ଓ ଊଷ୍ମ) ବର୍ଣ୍ଣ ଆଠପ୍ରକାର, ଯମବର୍ଣ୍ଣ ଚାରିପ୍ରକାର ଅଟେ |[66] ୪

ଅନୁସ୍ୱାରୋ ବିସର୍ଗଶ୍ଚ □କ-ପୌ ଚାପି ପରାଶ୍ରିତୌ ।

ଦୁଃସ୍ପୃଷ୍ଟୋ ଚାପି ବିଜ୍ଞେୟୋ ଳୃକାରୋ ପ୍ଲୁତ ଏବ ସଃ ॥ ୫॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଅନୁସ୍ୱାରଃ ବିସର୍ଗଃ ଚ , ପରାଶ୍ରିତୌ □କ-ପୌ ଚ ଅପି , ପ୍ଲୁତଃ ଳୃକାରଃ ଏବ । ଦୁଃସ୍ପୃଷ୍ଟଃ ଚ ଇତି ବିଜ୍ଞେୟୋ ।

ଅନୁବାଦ-: ଅନୁସ୍ୱାର (୧) ବିଃସର୍ଗ (୧) କଖପରକ ତଥା ପଫପରକ (ପରନିରୂପଣୀୟ ବିଃସର୍ଗ ବକାର ରୂପ) ଜିହ୍ୱାମୂଳୀୟ ଆଉ ଉପଧ୍ମାନୀୟ ବର୍ଣ୍ଣ ଦୁଇଟି, ଦୁସ୍ପଷ୍ଟତାକୁ ପ୍ରାପ୍ତ ପ୍ଲୁତ ଳୃକାର (୧) ବୋଲି ମାନିଛନ୍ତି |ଏହିଭଳି ଭାବରେ ୬୩ ବର୍ଣ୍ଣ ହେଉଛି | ଅନୁସ୍ୱାରକୁ ବିଭାଜନ କରାଗଲେ ହ୍ରସ୍ୱ, ଦୀର୍ଘ, ବା ଅନୁସ୍ୱାର ରଙ୍ଗ ରୂପ ଦୁଇଟି ସଂଖ୍ୟା ହେଉଛି ଯାହାଦ୍ୱାରା ୬୪ ଟି ବର୍ଣ୍ଣ ହେଉଛି |୫

---

[65] ସାରସ୍ୱତ ବ୍ୟାବହାରିକ ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ, ପ୍ରଧାନ କୃଷ୍ଣଚନ୍ଦ୍ର,ହୋତା ବ୍ରଜକିଶୋର, ପ୍ରଧାନ ଭାସ୍କର, (ପୃ-୧୦)|
ଓଡିଆ ଭାଷାରେ ୪୯ ଟି ବର୍ଣ୍ଣ ବ୍ୟବହୃତ ହେଉଛି|

[66] ସାରସ୍ୱତ ବ୍ୟାବହାରିକ ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ, ପ୍ରଧାନ କୃଷ୍ଣଚନ୍ଦ୍ର,
ହୋତା ବ୍ରଜକିଶୋର, ପ୍ରଧାନ ଭାସ୍କର,(ପୃ-୧୨)|
ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣ ୧୧, ସ୍ପର୍ଶବର୍ଣ୍ଣ ୨୫, ଅନ୍ତଃସ୍ଥ ବର୍ଣ୍ଣ ୫ ଓ ଊଷ୍ମ ବର୍ଣ୍ଣ ୪ |

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया ।

मनः कायाग्निमाहन्ति सः प्रेरयति मारुतम् ॥ ६॥

अन्वयः- आत्मा बुद्ध्या अर्थान समर्थ्य विवक्षया मनः युङ्क्ते । मनः कायाग्निम् आहन्ति , सः मारुतम् प्रेरयति ॥

ଅନୁବାଦ-: ଜୀବାତ୍ମା ବୁଦ୍ଧିଦ୍ୱାରା ବିଷୟକୁ ଭଲଭାବରେ ଜାଣିପାରିଥାଏ| ଜୀବାତ୍ମା ଜାଣିକରି ମନକୁ ସୂଚୀତ କରିଥାଏ ଯାହାଫଳରେ ମନ କାର୍ଯ୍ୟରେ ନିୟୋଗ ହୋଇଥାଏ | ମନ ଶରୀରରୂପି ଅଗ୍ନିକୁ ପରିଚାଳନା କରିବା ପାଇଁ ସହଯୋଗ ଦେଇଥାଏ | ବର୍ତ୍ତମାନ ଶରୀରରେ ଥିବା ଅଗ୍ନି ହୃଦୟର ପ୍ରକୋଷ୍ଠରେ ପ୍ରବେଶ କରି ବାୟୁକୁ ପରିଚାଳନା କରିଥାଏ | ୬

मारुस्तूरसिचरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् ।

प्रातःसवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥ ७॥

अन्वयः- मारुतः तु उरसि चरन् प्रातःसवनयोगम् गायत्रम् छन्दः आश्रितम् तम् मन्द्रम् स्वरम् जनयति ॥

ଅନୁବାଦ-: ଏହିଭଳି ଭାବରେ ପ୍ରେରିତ ବାୟୁ ବକ୍ଷସ୍ଥଳରେ ପ୍ରବେଶକରି ପ୍ରାତଃ ସମୟରେ ପ୍ରଯୁଜ୍ୟ ହୋଇ ଗାୟତ୍ରୀ ଛନ୍ଦ[67] ସହିତ ସମ୍ବନ୍ଧ ରଖି ଗମ୍ଭୀର ଭାବରେ ସ୍ୱରକୁ ଉତ୍ପନ୍ନ କରିଥାଏ | ୭

कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् ।

तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगतम् ॥ ८॥

अन्वयः- माध्यन्दिनयुगम् त्रैष्टुभानुगम् मध्यमम् । तार्तीयसवनम् शीर्षण्यम्जागतानुगतम् तारम् ॥

ଅନୁବାଦ-: ଏହି ବାୟୁ କଣ୍ଠ ଦେଶରେ ପ୍ରବେଶ କରି ମାଧ୍ୟନ୍ଦିନ ସବନରେ[68] ବ୍ୟବହାର ହୋଇ ତ୍ରୀଷ୍ଟୁପ ଛନ୍ଦ ସହ ସମ୍ବନ୍ଧ ରଖି ମଧ୍ୟମ ସ୍ୱର କୁ ଉତ୍ପନ୍ନ କରିଥାଏ | ଶିରରେ ପ୍ରବେଶ କରି ତୃତୀୟ ସବନ ରେ ପ୍ରଯୁଜ୍ୟ ଜଗତୀ ଛନ୍ଦ [69]ସହିତ ସମ୍ବନ୍ଧ ରଖି ତାର ସ୍ୱରକୁ ଉତ୍ପନ୍ନ କରିଥାଏ | ୮

---

[67] ସାରସ୍ୱତ ବ୍ୟାବହାରିକ ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ, ପ୍ରଧାନ କୃଷ୍ଣଚନ୍ଦ୍ର, ହୋତା ବ୍ରଜକିଶୋର, ପ୍ରଧାନ ଭାସ୍କର, (ପୃ-୫୦୩) |
ଓଡିଆ ରେ ଗାୟତ୍ରୀ, ଜଗତୀ, ଅର୍ଥାତ ବୈଦିକ ଛନ୍ଦ ନାହିଁ |

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ।

वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥ ९॥

अन्वयः- सः उदीर्ण मारुतः मूर्ध्नि अभिहतः वक्त्रम् आपद्य वर्णन् जनयते तेषाम् स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नादनुप्रदानतः पञ्चधा विभागः स्मृतः इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत ॥

ଅନୁବାଦ-: ଏହି ପ୍ରକାର ଉପରକୁ ଯାଉଥିବା ପ୍ରାଣବାୟୁ ଶିରରେ ବାଜି "ଖ"ର ମୁଖରେ ପହଁଚି "ଅ" କାରାଦି ବର୍ଣ୍ଣ ସୃଷ୍ଟି କରୁଛି | ଏହି ବର୍ଣ୍ଣର ଉଦାତ୍ତ ଆଦିସ୍ୱର ହ୍ରସ୍ୱ, ଦୀର୍ଘାଦିକାଳ, କଣ୍ଠ, ମୂର୍ଦ୍ଧା , ତାଲ୍ୱାଦିସ୍ଥାନ ଆଭ୍ୟାନ୍ତର ପ୍ରଯତ୍ନ ଆଉ ବାହ୍ୟପ୍ରଯତ୍ନ ଏହି ପାଞ୍ଚ କାରଣ ଦ୍ୱାରା ପାଞ୍ଚ ପ୍ରକାରର ବିଭେଦ ହୋଇଛି | ଏହି କଥା ବର୍ଣ୍ଣ ଶିକ୍ଷାର ଅଭିଜ୍ଞ ବିଦ୍ୱାନ କହିଛନ୍ତି | ଏହି ବର୍ଣ୍ଣ ବିଭାଗର କାରଣ ଗୁଡିକ ବୁଝିବା ଉଚିତ | ୯

स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नादनुप्रदानतः ।

इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत ॥ १०॥

अन्वयः- स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नादनुप्रदानतः पञ्चधा विभागः स्मृतः इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत ॥

उदातानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः ।

ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥ ११॥

अन्वयः-अचि उदात्तः च अनुदात्तः च स्वरितः च (इति) त्रयः स्वराः ,ह्रस्व दीर्घः प्लुत इति कालतः नियमाः (च सन्ति)॥

ଅନୁବାଦ-: ଅଚ ବର୍ଣ୍ଣରେ ଉଦାତ୍ତ ଅନୁଦାତ ଆଉ ସ୍ୱରିତ ଏହି ତିନିଗୋଟି ସ୍ୱର କାଳକ୍ରମରେ ହ୍ରସ୍ୱ, ଦୀର୍ଘ, ପ୍ଲୁତ ଭାବରେ ପ୍ରକାଶ କରୁଛି |[70] (୧୦-୧୧)

उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ ।

स्वरित्प्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥ १२॥

---

[68] ସଂସ୍କୃତ ଶବ୍ଦ ଅର୍ଥାତ ସ୍ଥାନ |

[70]ସାରସ୍ୱତ ବ୍ୟାବହାରିକ ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ, ପ୍ରଧାନ କୃଷ୍ଣଚନ୍ଦ୍ର, ହୋତା ବ୍ରଜକିଶୋର, ପ୍ରଧାନ ଭାସ୍କର, (ପୃ-୧୨)|
ଉଚ୍ଚାରଣ ଅନୁସାରେ ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣ ମାନଙ୍କୁ ଦୁଇ ଶ୍ରେଣୀରେ ବିଭକ୍ତ କରାଯାଇଛି |

अन्वयः-निषादगान्धारौ उदात्ते, ऋषभ धैवतौ अनुदात्ते, एते षड्ज-मध्यम –पञ्चमाः स्वरित प्रभवा हि॥

ଅନୁବାଦ-: ଗାନ କରିବା ସମୟରେ ଆମର ସାତଟି ସ୍ୱର ଥାଏ (ସା,ରେ,ଗା,ମା,ପା,ଧା,ନି) ସେଥିମଧ୍ୟରୁ ନିଷାଦ ସ୍ୱର ଆଉ ଗାନ୍ଧାର ସ୍ୱର ଉଦାତ୍ତ ଅଟେ | ଋଷଭ ସ୍ୱର ଏବଂ ଧୈବତ ସ୍ୱର ଅନୁଦାତ ଅଟେ | ଷଡଜ ସ୍ୱର, ମଧ୍ୟମ ସ୍ୱର ଆଉ ପଞ୍ଚମ ସ୍ୱର ସ୍ୱରିତ ମୂଳକ ଭାବରେ ଅନ୍ତର୍ଭୁକ୍ତ | ଏଠାରେ ଗାନସ୍ୱର ସହିତ ପାଠସ୍ୱରକୁ ତୁଳନା କରାଯାଇଛି |୧୨

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।

जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥ १३॥

अन्वयः- वर्णानाम् उरः कण्ठः शिरः तथा जिह्वामूलम् च दन्ताः च नासिका ओष्ठौ च तालु च अष्टौ स्थानानि ॥

ଅନୁବାଦ-: ପାଣିନୀୟ ଶିକ୍ଷା ଆଉ ଅନ୍ୟ କେତେକ ଶିକ୍ଷା ରେ ବର୍ଣ୍ଣ ଗୁଡିକର ଉଚ୍ଚାରଣ ସ୍ଥାନ ଆଠ ପ୍ରକାର ବୋଲି ଉଲ୍ଲେଖ ଅଛି | ସେହି ବର୍ଣ୍ଣ ଗୁଡିକର ଆଠ ପ୍ରକାର ଉଚ୍ଚାରଣ ସ୍ଥାନ ହେଉଛି ,୧-ଉରୁ ; ୨-କଣ୍ଠ; ୩-ମୁର୍ଧା; ୪-ଜିହ୍ୱାମୂଳ; ୫-ଦନ୍ତ; ୬-ନାସିକା; ୭-ଓଷ୍ଠ ଏବଂ ୮-ତାଳୁ ଏସବୁ ଉଚ୍ଚାରଣ ସ୍ଥାନ ଅଟେ |[71] ୧୩

ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च ।

जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥ १४॥

अन्वयः- उष्मणः ओभावः विवृत्तिः शषसाः रेफः एव च जिह्वामूलम् उपध्मा च अष्टविधा गतिः॥

ଅନୁବାଦ-: “ଓ” କାର, ବିବୃତ , “ଶ” କାର , “ଷ” କାର ,”ସ” କାର , ରେଫ ,ଜିହ୍ୱାମୂଳୀୟ ଆଉ ଉପଧ୍ମାନୀୟ ଏହି ଆଠ ପ୍ରକାର ବର୍ଣ୍ଣ ଠାରେ ବିଃସର୍ଗ ଗତି ପ୍ରାପ୍ତି ହୋଇଥାଏ | ବୈଦିକ ସ୍ୱର ପାଠ କଲାବେଳେ

[71] ସାରସ୍ୱତ ବ୍ୟାବହାରିକ ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ, ପ୍ରଧାନ କୃଷ୍ଣଚନ୍ଦ୍ର, ହୋତା ବ୍ରଜକିଶୋର, ପ୍ରଧାନ ଭାସ୍କର, (ପୃ-୧୪)|
ଓଡିଆ ରେ ୧୦ ପ୍ରକାର ଉଚ୍ଚାରଣ ସ୍ଥାନ ଅଟେ |

ଅବ୍ୟବହିତ ଉତ୍ତରଠାରେ ସ୍ୱର ହୋଇ ପର ସ୍ୱର ପୃଷ୍ଠଭାଗରେ ଯେଉଁ ଲଘୁ ବିରାମ କରାଯାଇଥାଏ ତାହାକୁ ବିବୃତ କୁହାଯାଏ | ୧୪

यद्यौकारप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम् ।

स्वरान्तं तादृशं विद्यादन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥ १५॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଯଦି ଓଭାବପ୍ରସନ୍ଧାନମ୍ ପଦମ୍ ଉକାରାଦିପରମ୍ ତାଦୃଶମ୍ ସ୍ୱରାନ୍ତମ୍ ବିଦ୍ୟାତ, ଯଦ୍ ଅନ୍ୟତ ତତ ବ୍ୟକ୍ତମ୍ ଊଷ୍ମଣଃ

ଅନୁବାଦ-: ଯଦିଓ ଭାବପ୍ରାପ୍ତିଯୁକ୍ତ ସନ୍ଧିରେ ଯୁକ୍ତପଦଠାରେ ଅବ୍ୟବହିତ ପରବର୍ତ୍ତୀ ପଦ "ଉ"କାରାଦି ହୋଇଥାଏ, ତାହାଲେ ପୂର୍ବ ପଦରେ "ଅ" କାର ସ୍ୱରାନ୍ତ ହୁଏ | ଯଦି ଅବ୍ୟବହିତ ପରବର୍ତ୍ତୀ ଅନୁକାରାଦି ପଦ ରେ ଓ ଭାବ ପ୍ରାପ୍ତିଯୁକ୍ତ ସନ୍ଧି ରେ ପୂର୍ବ ପଦ ଯୁକ୍ତ ହୁଏ | ଏହାକୁ ସ୍ପଷ୍ଟ ରୂପରେ ବିଃସର୍ଗର ଅଭାବ ପ୍ରାପ୍ତି ରୂପ ଗତି ବିଶେଷଠାରେ ଯୁକ୍ତପଦ ଜଣାଯାଏ | ଉଦାହରଣସ୍ୱରୂପ ସୂର୍ଯୋଦୟରେ ଉତ୍ତର ପଦ "ଉ"କାରଦି ହୋଇ ସମାସାନ୍ତର୍ଗତ ହୋଇଥାଏ, ତାହା ସହ ପୂର୍ବପଦ ସୂର୍ଯ୍ୟ ସ୍ୱରାନ୍ତ ହୋଇଥାଏ | ୧୫

हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्स्थाभिश्च संयुतम् ।

औरस्यं तं विजानीयात्कठ्यमाहुरसंयुतम् ॥ १६॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ପଞ୍ଚମୈଃ ଯୁକ୍ତମ୍ ଅନ୍ତସ୍ଥାଭିଃ ଚ ସଂଯୁତମ୍ ହକାରମ୍ ଉରସ୍ୟମ୍ ବିଜାନୀଯାତ ଅସଂଯୁତମ୍ ତମ କଣ୍ଠ୍ୟମ୍ ଆହୁଃ ॥

ଅନୁବାଦ-: ପରବର୍ତ୍ତୀ ବର୍ଗର ପଞ୍ଚମବର୍ଣ୍ଣ ଆଉ ଅନ୍ତସ୍ଥାସଂଜ୍ଞକ ବର୍ଣ୍ଣରେ ସଂଯୁକ୍ତ "ହ"କାରକୁ ଉରଃ ସ୍ଥାନ ବୋଲି ମନେ କରାଯାଏ, ଆଉ ସେହିବର୍ଣ୍ଣରେ ଅଶଂଯୁକ୍ତ "ହ"କାର କୁ କଣ୍ଠ ସ୍ଥାନ ମାନନ୍ତି | ୧୬

कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू ।

स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या ऌतुलसाः स्मृताः ॥ १७॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଅହୌ କଣ୍ଠ୍ୟୌ ଇଚୁଯଶାଃ ତାଲବ୍ୟାଃ ଉପୁ ଓଷ୍ଟଜୌ ଋଟୁରଷାଃ ମର୍ଧନ୍ୟାଃ ସ୍ୟୁଃ ,ଌତୁଲସାଃ ଦନ୍ତ୍ୟାଃ ସ୍ମୃତାଃ ॥

ଅନୁବାଦ-: "ଅ"କାର ଆଉ "ହ"କାର କଣ୍ଠ ସ୍ଥାନ ଅଟେ| "ଇ"କାର ଚ ବର୍ଗୀୟ ବର୍ଣ୍ଣ "ୟ"କାର, "ଶ"କାର ତାଳୁସ୍ଥାନ ଅଟେ| "ଉ"କାର ଆଉ ପ ବର୍ଗୀୟ ବର୍ଣ୍ଣ ମାନକଂର ସ୍ଥାନ ଓଷ୍ଠ ଅଟେ| "ଋ"କାର ସହିତ "ଟ"ବର୍ଗ ଆଉ ରେଫ "ଷ" କାର ସ୍ଥାନ ମୂର୍ଦ୍ଧା ଅଟେ | ସେହିପରି "ଳୃ" କାର "ତ"ବର୍ଗୀୟ ବର୍ଣ୍ଣ ତଥା "ଲ" କାର ଆଉ "ସ" କାର ସ୍ଥାନ ଦାନ୍ତ ଅଟେ | ୧୭

जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठो वः स्मृतो बुधैः ।

एऐ तु कण्ठतालव्या ओऔ तु कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ॥ १८॥

ଅନ୍ୱୟଃ- କୁଃ ବୁଧୈଃ ଜିହ୍ୱାମୂଳେ ପ୍ରୋକ୍ତଃ, ୱଃ ଦନ୍ତୋଷ୍ଠ୍ୟଃ ସ୍ମୃତଃ ଏଐ ତୁ କଣ୍ଠତାଳବ୍ୟା ସ୍ମୃତୌ, ଓଔ ତୁ କଣ୍ଠୋଷ୍ଠଜୌ ସ୍ମୃତୌ ॥

ଅନୁବାଦ-: "କ" ବର୍ଗୀୟ ବର୍ଣ୍ଣ (କ, ଖ, ଗ, ଘ) ଜିହ୍ୱାମୂଳରେ ଉତ୍ପନ୍ନ ହୋଇଥାଏ | ବର୍ଣ୍ଣରେ ଅଭିଜ୍ଞଲୋକ "ବ"କାର ଉଚ୍ଚାରଣ ସ୍ଥାନ ଦନ୍ତୋଷ୍ଠ ମାନନ୍ତି | "ଏ" କାର ଆଉ "ଐ" କାର ବର୍ଣ୍ଣ ଉଚ୍ଚାରଣ ସ୍ଥାନ କଣ୍ଠ-ତାଳୁ | ବର୍ଣ୍ଣରେ ଅଭିଜ୍ଞ ଲୋକମାନେ "ଓ" କାର "ଔ" କାର କଣ୍ଠ- ଓଷ୍ଠ ଉଚ୍ଚାରଣର ସ୍ଥାନ ଦ୍ୱୟ ମାନନ୍ତି | ୧୮

अर्धमात्रा तु कण्ठ्या स्यादेकारैकारयोर्भवेत् ।

ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम् ॥ १९॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଐ କାରୌକାରୟୋଃ ଅର୍ଧମାତ୍ରା ତୁ କଣ୍ଠ୍ୟା ସ୍ୟ ଭବେତ, ଏକାରୌକାରୟୌଃ ମାତ୍ରା, ତୟୋଃ ର୍ବିବୃତସଂବୃତମ୍ ଭବେତ୍ ॥

ଅନୁବାଦ-: "ଐ" କାର ଆଉ "ଔ" କାର ଠାରେ ଆଦ୍ୟ ଅର୍ଦ୍ଧ ମାତ୍ରା, କଣ୍ଠ ସ୍ଥାନକ "ଅ" ବର୍ଣ୍ଣ ହୁଏ | "ଏ" କାର ଏବଂ "ଓ" କାର ଠାରେ ଆଦ୍ୟମାତ୍ର କଣ୍ଠସ୍ଥାନ "ଅ" ବର୍ଣ୍ଣ ହୁଏ | ଏହାର ବିବୃତ ଏବଂ ସଂବୃତ କରଣ ହୁଏ | "ଏ" କାର ଏବଂ "ଐ" କାରରେ କଣ୍ଠ ସ୍ୱର ଅର୍ଦ୍ଧମାତ୍ରା ତଥା "ଓ" କାର ଆଉ "ଔ" କାରରେ କଣ୍ଠ ସ୍ୱର ଏକମାତ୍ରା ପୂର୍ବ ଭାଗରେ ହୁଏ | କଣ୍ଠ ସ୍ଥାନରେ "ଅ" ବର୍ଣ୍ଣ ବିବୃତ ଆଉ ସଂବୃତ ହୁଏ |୧୯

संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम् ।

घोषा वा संऋृताः सर्वे अघोषा विवृतः स्मृताः ॥ २०॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ମାତ୍ରିକଂ ସଂବୃତଂ ଜ୍ଞେୟଂ , ଦ୍ୱିମାତ୍ରିକମ୍ ତୁ ବିବୃତମ୍ ସର୍ବେ ଘୋଷାଃ ବା ସଂବୃତାଃ , ଅଘୋଷା ବିବୃତଃ ସ୍ମୃତାଃ ॥

ଅନୁବାଦ-: ହ୍ରସ୍ୱ "ଅ" ବର୍ଣ୍ଣ କୁ ସଂବୃତ ମାନାଯାଏ, ଦୀର୍ଘ "ଅ" ବର୍ଣ୍ଣ କୁ ବିବୃତ କୁହାଯାଏ | ସମସ୍ତ ଘୋଷ ବର୍ଣ୍ଣ ସଂବୃତ ଏବଂ ସମସ୍ତ ଅଘୋଷ ବର୍ଣ୍ଣ ବିବୃତ ଅଟନ୍ତି [72]|୨୦

स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम् ।

तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचो तथैव च ॥ २१॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ସ୍ୱରାଣାମ୍ ଉଷ୍ମଣାମ୍ ଚ ଏବ କରଣମ୍ ବିବୃତମ୍ ସ୍ମୃତମ୍, ତେଭ୍ୟଃ ଅପି ଏଙୌ ବିବୃତୈ ତାଭ୍ୟାମ୍ ଐଚୈ ତଥା ଚ ଏବ ॥

ଅନୁବାଦ-: "ଅ" କାର ଆଦି ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣ ଏବଂ ଉଷ୍ମ ବର୍ଣ୍ଣ (ଶ , ଷ, ସ, ହ) ବିବୃତ ଆଭ୍ୟନ୍ତର ପ୍ରଯତ୍ନ ବିବୃତ ବୋଲି ବିଚାରକରାଯାଏ |ଏହି ବର୍ଣ୍ଣ ର "ଏ" "ଓ" ଅଧିକ ବିବୃତ ହୋଇଥାଏ | "ଏ" ବର୍ଣ୍ଣ "ଓ" ବର୍ଣ୍ଣ ଠାରୁ, "ଐ" ବର୍ଣ୍ଣ "ଔ" ବର୍ଣ୍ଣ ଠାରୁ ଅଧିକ ବିବୃତ ହୋଇଥାଏ |୨୧

अनुस्वार यमानां च नासिका स्थानमुच्यते ।

अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ॥ २२॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଅନୁସ୍ୱାରୟମାନାମ୍ ସ୍ଥାନମ୍ ଚ ନାସିକା ଉଚ୍ୟତେ । ଅଯୋଗବାହାଃ ଆଶ୍ରୟସ୍ଥାନଭାଗିନଃ ବିଜ୍ଞେୟା ॥

ଅନୁବାଦ-: ଅନୁସ୍ୱାର ଏବଂ ଯମ ସଂଜ୍ଞକ ବର୍ଣ୍ଣ ସ୍ଥାନ ନାସିକା ଅଟେ | ଅଯୋଗବାହ ବର୍ଣ୍ଣ(ଅନୁସ୍ୱାର, ବିଃସର୍ଗ, ଜିହ୍ୱାମୂଳୀୟ ଉପଧ୍ମାନୀୟ ଯମ, ଆଉ ନାସିକ୍ୟ ବର୍ଣ୍ଣ) ନିଜର ଆଶ୍ରୟଭୂତ ନିଜର ପୂର୍ବବର୍ତ୍ତୀ ସ୍ୱର ସ୍ଥାନ କୁ ଗ୍ରହଣ କରିଥାନ୍ତି|୨୨

अलाबुवीणानिर्घोषो दन्तमूल्यस्वराननु ।

[72] ସାରସ୍ୱତ ବ୍ୟାବହାରିକ ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ, ପ୍ରଧାନ କୃଷ୍ଣଚନ୍ଦ୍ର, ହୋତା ବ୍ରଜକିଶୋର, ପ୍ରଧାନ ଭାସ୍କର, (ପୃ-୫୦୩) |
ଓଡିଆ ରେ "ଅ" ବର୍ଣ୍ଣ ର ବ୍ୟବହାର ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣ ରେ ପ୍ରୟୋଗ ହୁଏ |

अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यम् होः शषसेषु च ॥ २३॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ସ୍ୱରାନଗଃ ଅନୁସ୍ୱାରଃ ହ୍ୱୋଃ ଶଷସେଷୁ ଚ ତୁ ନିତ୍ୟମ୍ ଦନ୍ତମୂଲ୍ୟଃ ଅଲାବୁବୀଣାନିର୍ଘୋଷଃ କର୍ତବ୍ୟଃ॥

ଅନୁବାଦ-: ସ୍ୱର ବର୍ଣ୍ଣର ପରେ ଆସୁଥିବା ଅନୁସ୍ୱାରକୁ "ହ" କାର ରେଫ ଏବଂ ଶ, ଷ, ସ ଉତ୍ତରବର୍ତ୍ତୀ ହୋଇଥାଏ | ସଦାବେଳେ ଦନ୍ତମୂଳ ସ୍ଥାନ ଆଉ ଲୌକିକବାଣୀ ଧ୍ୱନି ତୁଳନା କରି ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ| ପୂର୍ବପଦ୍ୟ ଆଉ ଏହି ପଦ୍ୟ ରେ ଅନୁସ୍ୱାର ସ୍ଥାନ ବିଷୟରେ ପାର୍ଥକ୍ୟ ଦର୍ଶାଯାଇଛି [73]|୨୩

अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये ।

द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद्यत्रोकारवकारयोः ॥ २४॥

ଅନ୍ୱୟଃ -ଯଥା ଓକାର-ବକାରୟୌଃଓଷ୍ଠ୍ୟୌ ଦ୍ୱିଃ ବିଗୃହ୍ଣୀୟାତ୍ ଅନୁସ୍ୱାରେ ବିବୃତ୍ୟାମ୍ ତୁ ବିରାମ୍ ଅକ୍ଷରଦ୍ୱୟେ ଚ ଓଷ୍ଠ୍ୟୌ ତୁ ଦ୍ୱିଃ ବି ଗୃହ୍ଣୀୟାତ୍ ॥

ଅନୁବାଦ-: ଯେଉଁଭଳି ଭାବରେ "ବ" କାର ଆଉ "ଓ" କାର ଉଚ୍ଚାରଣ ପାଇଁ ଓଷ୍ଠକୁ ଦୁଇଥର ବ୍ୟାପୃତ (ଖୋଲିବା) କରିବାକୁ ପଡେ ସେହିଭଳି ଭାବରେ ଅନୁସ୍ୱାର ,ବିବୃତି, ବିରାମ ,ଆଉ ବ୍ୟଂଜନଦ୍ୱୟ ସ୍ୱରର ପୃଷ୍ଠରେ ଆସି ଏହି ଓଷ୍ଠସ୍ୱର ଉଚ୍ଚାରଣ ପାଇଁ ଓଠକୁ ଦୁଇଥର ବ୍ୟାପୃତ କରିବାକୁ ପଡେ|୨୪

व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दन्ताभ्यां न तु पीडयेत् ।

भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥ २५॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ପତନଭେଦାଭ୍ୟାମ୍ ଭୀତା ବ୍ୟାଘ୍ରୀ ପୁତ୍ରାନ୍ ଯଥା ଦଂଷ୍ଟ୍ରାଭାମ୍ ହରେତ୍, ନ ଚ ପୀଡୟତେ, ତଦ୍ୱଦ ବର୍ଣାନ୍ ପ୍ରୟୋଜୟେତ୍ ॥

ଅନୁବାଦ-: ଯେପରି ଭାବରେ ବ୍ୟାଘ୍ରିର ଶିଶୁ ପଡିଯିବାର ଭୟ ରହିଥାଏ | ବ୍ୟାଘ୍ରି ସେହି ଛୋଟଛୋଟ ଶିଶୁ ମାନଙ୍କୁ ତା'ର ନିଜ ଦାନ୍ତରେ ହାଲକା ରୂପେ କାମୁଡି ଗୋଟିଏ ସ୍ଥାନରୁ ଅନ୍ୟ ସ୍ଥାନକୁ ନେଇଥାଏ | ଯାହାଦ୍ୱାରା ଦାନ୍ତରେ ଶିଶୁକୁ କାମୁଡି ଧରିଥିବା ଫଳରେ ଶିଶୁମାନେ କୌଣସି ପ୍ରକାରରେ ପୀଡିତ

[73] ସାରସ୍ୱତ ବ୍ୟାବହାରିକ ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ, ପ୍ରଧାନ କୃଷ୍ଣଚନ୍ଦ୍ର, ହୋତା ବ୍ରଜକିଶୋର, ପ୍ରଧାନ ଭାସ୍କର,(ପୃ-୧୨)|
ଓଡିଆ ରେ ୪୦ ଟି ଧ୍ୱନି ମିଳିଥାଏ |

ହୋଇନଥାନ୍ତି | ସେହିପରି ଭାବରେ ବର୍ଣ୍ଣକୁ ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ସମୟରେ କରଣକୁ ଅଧିକ ଶିଥିଳ କରିବ ନାହିଁ କି ଅଧିକ ଦୃଢ କରିବ ନାହିଁ , ସମୁଚିତ ଭାବରେ ବର୍ଣ୍ଣକୁ ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ |୨୫

यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्र□ इत्यभिभाषते ।

एवम् रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अरा□ इव खेदया ॥ २६॥

अन्वयः- सौराष्ट्रिका नारी यथा तक्र□ । इति अभिभाषते एवम् खे अरा□ इव खेदया रङ्गाः प्रयोक्तव्याः ॥

ଅନୁବାଦ-: ଏଠାରେ ରଙ୍ଗ ବର୍ଣ୍ଣ ଉଚ୍ଚାରଣ ସ୍ପଷ୍ଟ କରିବାପାଇଁ ଆଲୋଚନା କରାଯାଇଛି | ଯେଉଁଭଳି ଭାବରେ ସୌରାଷ୍ଟ୍ର ଦେଶର ଗୋପାଳକନ୍ୟା ଦହି ର ଉଚ୍ଚାରଣ “ତକ୍ରଁ ” କରିଥାଏ | ଏହି ପଦରେ ହ୍ରସ୍ୱାନ୍ତ ପଦକୁ ଦୀର୍ଘାନ୍ତ ଆଉ ପ୍ଲୁତାନ୍ତ ସହ ଯୋଡିକରି ପଛରେ ହ୍ରସ୍ୱ “ଆଁ” ଧ୍ୱନି ଯୋଗକରାଯାଏ | ଏହିଭଳି “ଖେଁ ଅରାଁ” ଇବ ଖେଦୟା[74] ଇତ୍ୟାଦି ସ୍ଥାନରେ ରଙ୍ଗବର୍ଣ୍ଣ ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ |୨୬

रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्नो ग्रसेत्पूर्वमक्षरम् ।
दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात्पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥ २७॥

अन्वयः- रङ्गवर्णम् प्रयुञ्जीरन्, पूर्वम् अक्षरम् नो ग्रसेत, दीर्घस्वरम् प्रयुञ्जीयात्, पश्चात् नासिक्यम् आचरेत ॥

ଅନୁବାଦ-: ବେଦାଧ୍ୟାୟୀ ଜନ ରଙ୍ଗବର୍ଣ୍ଣର ପଟୁତାପୂର୍ବକ ଉଚ୍ଚାରଣ କରିଥାଏ | ରଙ୍ଗବର୍ଣ୍ଣର ପୂର୍ବବର୍ତ୍ତୀ ସ୍ୱରକୁ ହ୍ରସ୍ୱ ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ ନୁହେଁ | ରଙ୍ଗବର୍ଣ୍ଣର ପୂର୍ବବର୍ତ୍ତୀ ସ୍ୱରକୁ ଦୀର୍ଘ ଉଚ୍ଚାରଣ ଆଉ ଏହି ଦୀର୍ଘ ସ୍ୱରକୁ ନାସିକା ମାତ୍ର ସ୍ଥାନକ ବର୍ଣ୍ଣରେ ଉଚ୍ଚାରଣ ଆବଶ୍ୟକ[75]|୨୭

हृदये चैकमात्रस्त्वर्धमात्रस्तु मूर्धनि ।
नासिकायां तथार्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता ॥ २८॥

---

[74] ଋଗବେଦ ୫.୭୭.୩ |

[75] ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ-କଳନା, ତ୍ରିପାଠୀ ସନ୍ତୋଷ (ପୃ-୫୨) | ଉଚ୍ଚାରଣ ପ୍ରକ୍ରିୟା ଦିଗରୁ ଓଡିଆ ଭାଷାରେ ପ୍ରକୃତ ସ୍ୱରଧ୍ୱନିର ସଂଖ୍ୟା –ଆଠ |

अन्वयः- हृदये तु एकमात्रःमुर्धनि तु अर्धमात्रः तथा नासिकायाम् अर्धम् च एवम् रङ्गस्य द्विमात्रता ॥

ଅନୁବାଦ-: ରଙ୍ଗବର୍ଣ୍ଣ ଉଚ୍ଚାରଣ ହୃଦୟରେ ଏକମାତ୍ରା ଶିରରେ ଅର୍ଦ୍ଧମାତ୍ରା ସେହିପରି ନାସିକାରେ ଅର୍ଦ୍ଧମାତ୍ରା ହୋଇଥାଏ | ଏହିଭଳି ଭାବରେ ରଙ୍ଗର ଦ୍ୱିମାତ୍ରିକତା ହୁଏ |୨୮

हृदयादुत्करे तिष्ठन्कांस्येन समनुस्वरम् ।

मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वा□ इति निदर्शनम् ॥ २९॥

अन्वयः- हृदयात् उत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वरन् मार्दवम् च द्विमात्रम् च् जघन्वाइति निदर्शनम् ॥

ଅନୁବାଦ-: ବକ୍ଷସ୍ଥଳର ଉପରିଭାଗରେ କାଂସ୍ୟବାଦ୍ୟ ସମାନ ଧ୍ୱନିକୁ ମୃଦୁରୂପ ପ୍ରତୀତ ହୁଏ | ଏହା ମାତ୍ରାଦ୍ୱୟ କାଳରେ ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ | ଉଦାହରଣସ୍ୱରୂପ "ବୃତ୍ତଂ ଜଘନ୍ୱା... ଅପ ତଦ ବବାର"- [76] ଏହି ବାକ୍ୟରେ ଜଘନ୍ୱ ପ୍ରୟୋଗ ହୋଇଛି |୨୯

मध्ये तु कम्पयेत्कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत् ।

सरङ्गं कम्पयेत्कम्पं रथीवेति निदर्शनम् ॥ ३०॥

अन्वयः- कम्पम् तु मध्ये कम्पयते, उभौ पार्श्वौ समौ भवेत्, कम्पम् सरङ्गम् कम्पयते, रथीवेति निदर्शनम् ॥

ଅନୁବାଦ-: କମ୍ପସ୍ୱର ଉଚ୍ଚାରଣ କଲା ସମୟରେ ସ୍ୱରର ମଧ୍ୟଭାଗରେ କମ୍ପନ କରି ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ | ମଧ୍ୟଭାଗର ପୂର୍ବ କିମ୍ବା ଉତ୍ତର ଭାଗ ଉଦାତ୍ତ ରୂପେ ଅଥବା ଅନୁଦାତ୍ତ ରୂପେ ତୁଳନା କରି ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ | ଯଦି କମ୍ପସ୍ୱରରେ ରଙ୍ଗ ହୁଏ ତାହାଲେ ରଙ୍ଗ ସହିତ ସ୍ୱରକୁ କମ୍ପନ କରି ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ | ଉଦାହରଣସ୍ୱରୂପ- "ରଥୀବ"[77], "ବର୍ଷ୍ୟାଅଅହ" ଇତ୍ୟାଦି ପ୍ରୟୋଗ ହୋଇଥାଏ |୩୦

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः।

[76] ଋକ ବେଦ ୩୨|

[77] ଋଗବେଦ ମନ୍ତ୍ର (୫.୮୩.୩) |

सम्यग्वर्णप्रयोगेन ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३१॥

ଅନ୍ୱୟଃ-ଏବମ୍ ବର୍ଣାଃ ପ୍ରୟୋକ୍ତବ୍ୟାଃ ଅବ୍ୟାକ୍ତା ନ ପୀଡିତାଃଚ ନ । ସମ୍ୟଗ୍ ବର୍ଣପ୍ରୟୋଗେଣ ବ୍ରହ୍ମଲୋକେ ମହୀୟତେ ॥

ଅନୁବାଦ-: ଉପରୋକ୍ତ ବର୍ଣ୍ଣନା ପ୍ରକାର ଅନୁସାରେ ବର୍ଣ୍ଣ ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ ଅଟେ | ବର୍ଣ୍ଣର ଅସ୍ପଷ୍ଟ ଏବଂ କଠୋର ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ ନୁହେଁ | କର୍ତ୍ତା ଯଦି ବର୍ଣ୍ଣର ସଠିକ ଉଚ୍ଚାରଣ କରେ ତେବେ ବ୍ରହ୍ମ ଲୋକରେ ସଦଗତି ପ୍ରାପ୍ତି ହୁଏ |୩୧

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाथकः।

अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥ ३२॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଗୀତୀ ଶୀଘ୍ରୀ ଶିରଃ କମ୍ପୀ ତଥା ଲିଖିତପାଠକଃ ଅନର୍ଥଜ୍ଞୋ ଅଲ୍ପ-କଣ୍ଠଃ ଚ ଏତେ ଷଟ୍ ପାଠକାଧମାଃ॥

ଅନୁବାଦ-: ଗୀତ ଗାନ କରି ପଢୁଥିବା ପାଠକ, ୨-ବହୁତ ଶୀଘ୍ର ପଢୁଥିବା ପାଠକ, ୩-ମୁଣ୍ଡକୁ ହଲାଇ ହଲାଇ ପଢୁଥିବା ପାଠକ, ୪-ଅନଭ୍ୟସ୍ତ ଅକଣ୍ଠସ୍ଥୀକୃତ ବେଦଶାସ୍ତ୍ରକୁ ଲେଖନ ଆଧାରରେ ପଢୁଥିବା ପାଠକ, ୫-ଅର୍ଥଜ୍ଞାନ ବିନା ପଢୁଥିବା ପାଠକ (ଉଦାହରଣ –ଦ ଶ ରା –ମ ଶ ରା କରି ପଢୁଥିବା) ପାଠକ କିମ୍ବା ୬- ଶୁଷ୍କ କଣ୍ଠତ୍ୱନ୍ୟୁନ ପ୍ରାଣତ୍ୱାଦି ଦୋଷଯୁକ୍ତ ରୂପରେ ପଢୁଥିବା ପାଠକ ହେଉଛନ୍ତି ଅଧମ |ଏହିପରି ଛଅ ପ୍ରକାର ଅଧମ ପାଠକ ଅଛନ୍ତି |୩୨

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।

धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥ ३३॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ମାଧୁର୍ୟମ୍ ଅକ୍ଷରବ୍ୟକ୍ତିଃ ପଦଚ୍ଛେଦଃ ତୁ ସୁସ୍ୱରଃ ଧୈର୍ୟମ୍ ଲୟସମର୍ଥମ୍ ଚ ଏତେ ଷଟ୍ ପାଠକା ଗୁଣାଃ ॥

ଅନୁବାଦ-: ମଧୁରତା, ବର୍ଣ୍ଣ ସ୍ପଷ୍ଟତା, ପଦ ବିଭାଗ, ସୁସ୍ୱରତା, ସ୍ଥିରତା, ଲୟଯୁକ୍ତତା– ଏହି ଛଅଟି ପାଠକ ସମ୍ବନ୍ଧୀୟ ଗୁଣ ଅଟେ |୩୩

शङ्कितं भीतमुत्कृष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ।

काकस्वरं शिरसि गतं तथ स्थानविवर्जितम् ॥ ३४॥

ଅନ୍ୱୟଃ- शङ्कितम् भीतम् उद् घुष्टम् अव्यक्तम् अनुनासिकम् काकस्वरम् शिरसिगम् तथा स्थानविवर्जितम् ॥

ଅନୁବାଦ-: ସନ୍ଦେହଯୁକ୍ତ, ଭୟଯୁକ୍ତ, ଅତିଉଚ୍ଚଧ୍ୱନିଯୁକ୍ତ, ଅସ୍ପଷ୍ଟ, ଅନୁନାସିକୀକୃତ,[78] କାକପରି କଟୁସ୍ୱରଯୁକ୍ତ, ଅତିତାରସ୍ୱରଯୁକ୍ତ ତଥା ସ୍ୱସ୍ଥାନ ଠାରୁ ଭିନ୍ନ ସ୍ଥାନରେ, ଏହିଭଳି ବର୍ଣ୍ଣ ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ ନୁହେଁ |୩୪

उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम् ।

निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न न दीनं न तु सानुनास्यम् ॥ ३५॥

ଅନ୍ୱୟଃ- उपांशु दष्टम् त्वरितम् निरस्तम् विलम्वितम् गदगदितम् प्रगीतम् नीष्पीडितम् ग्रस्तपदाक्षरम् च न वदेत् ।दीनम् सानुनास्यम् तु न् ॥

ଅନୁବାଦ-: ମୁହଁରୁ ଶବ୍ଦ ବାହାରିବା ବିନା, ଦାନ୍ତପଂକ୍ତି ଖୋଲିବା ବିନା, ଅତି ଶୀଘ୍ର ଛେପ ପକେଇବା ଭଳି, ଅତି ଧୀରଗତିରେ, ଗଦଗଦ ହୋଇ, ଗୀତଗାଇଲା ଭଳି, ଉଚ୍ଚାରଣସ୍ଥାନର ଅନାବଶ୍ୟକ ସଙ୍କେତ କରି ଜିହ୍ୱାମୂଳକୁ ଦୃଢ କରି, ପଦକୁ ଆଉ ବର୍ଣ୍ଣକୁ ଲୁପ୍ତକରି ବାକ୍ୟଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ ନୁହେଁ | ନିରୁତ୍ସାହ ହୋଇ କିମ୍ବା ସମ୍ପୂର୍ଣ୍ଣ ବାକ୍ୟକୁ ଅନୁନାସିକ[79] କରି ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ ନୁହେଁ |୩୫

प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन।

मध्यंदिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन ॥ ३६॥

ଅନ୍ୱୟଃ- प्रातः नित्यम् उरःस्थितेन शार्दूलरुतोपमेन स्वरेण पठेत् ।माध्यन्दिने कण्ठगतेन चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन च् एव ॥

ଅନୁବାଦ-: ପ୍ରାତଃ ସ୍ନାନ ସମୟରେ ଶାସ୍ତ୍ରାଦିକୁ ପଢିବାବେଳେ ହୃଦୟସ୍ଥିତ ସ୍ୱର ବ୍ୟାଘ୍ରନାଦ ସମାନ ହେବା ଉଚିତ | ଆଉ ମାଧ୍ୟନ୍ଦିନ ସବନରେ କଣ୍ଠଗତ ସ୍ୱରରେ ଚକବେ ଶବ୍ଦପରି ହେବା ଉଚିତ ତାହା ସହିତ ବର୍ଣ୍ଣର ଉଚ୍ଚାରଣ ହେବା ଉଚିତ | ୩୬

[78] ଅନୁନାସିକ ସ୍ୱରଧ୍ୱନି ୬ ପ୍ରକାରର(ଅଁ,ଆଁ,ଇଁ,ଉଁ,ଏଁ,ଓଁ) ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ କଳନ, ପୃ ୫୫|

[79] ଅନୁନାସିକ ବର୍ଣ୍ଣ ୫ ପ୍ରକାରର- ଙ, ଞ, ଣ, ନ, ମ |

तारं तु विद्यात्सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् ।

मयूरहंसान्यमृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन ॥ ३७॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ତୃତୀୟମ୍ ସବନମ୍ ତୁ ତାରମ୍ ବିଦ୍ଦ୍ୟାତ୍ ।ତଚ୍ ଚ ସଦା ଶିରୋଗତମ୍ ମୟୂରହଂସାନ୍ୟାଭୃତସ୍ୱରାଣାମ୍ ତୁଲ୍ୟେନ ଶିରଃସ୍ଥିତେନ ନାଦେନ ପ୍ରୟୋଜ୍ୟମ୍ ॥

ଅନୁବାଦ-: ତୃତୀୟ ସବନରେ ମୟୂର, ହଂସ ଓ କୋଇଲି ଶବ୍ଦପରି ସମାନ ମୂର୍ଦ୍ଧାବସ୍ଥିତ ବର୍ଣ୍ଣଦ୍ୱାରା ତାର ସ୍ୱର ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ |୩୭

अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नमस्पृष्टा शलः स्मृताः ।

शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्तानिबोचानुप्रदानतः ॥ ३८॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଅଚଃଅସ୍ପୃଷ୍ଟାଃ ଯଣଃ ତୁ ଈଷତ୍, ଶଲଃ ନେମସ୍ପୃଷ୍ଟାଃ ସ୍ମୃତାଃ ଶେଷାଃ ହଲଃ ସ୍ପୃଷ୍ଟାଃ ପ୍ରୋକ୍ତାଃ ଅନୁପ୍ରଦାନତଃନିବୋଧ॥

ଅନୁବାଦ-: ଅଚ[80]କୁ ଅସ୍ପୃଷ୍ଟ ସ୍ୱର (ଅ, ଇ, ଉ, ଋ, ଌ,ଏ, ଓ ,ଐ, ଔ)[81], ୟଣ (ୟ, ୱ, ର, ଳ) ଈଷତ ସ୍ପୃଷ୍ଟ, ଶଳ (ଶ, ଷ, ସ, ହ)[82] ଅର୍ଦ୍ଧ ସ୍ପୃଷ୍ଟ, ଅବଶିଷ୍ଟ ହଳ ସ୍ପୃଷ୍ଟ ଅଟେ |୩୮

अमोञमोनुनासिका नह्नो नादिनो हझषः स्मृताः ।

ईषन्नादा यणो जश्च श्वासिनस्तु खफादयः ॥ ३९॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଅହ୍ନଃ ଅନୁନାସିକା ଅମଃ ହ-ଝଷଃ ନାଦିନଃ ସ୍ମୃତାଃ । ଯଣ-ଜଶଃ ତୁ ଈଷନ୍ନାଦାଃ ଖଫାଦୟଃ ତୁ ଶ୍ୱାସିନଃ ସ୍ମୃତାଃ ॥

ईषत्छ्वासांश्चरो विद्याद्गोर्धामैतत्प्रचक्षते ।

दाक्षीपुत्रः पाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवः ॥ ४०॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଚରଃଈଷଚ୍ଛ୍ୱାସାନ୍ ବିଦ୍ୟାତ୍, ଏତତ୍ ଗୋଃ ଧାମ ପ୍ରଚକ୍ଷତେ ।ଯେନ ଇଦମ୍ ଭୁବି ବ୍ୟାହୃତମ୍ ସଃ ଦାକ୍ଷୀପୁତ୍ରଃ ପାଣିନୟଃ ॥

---

[80] ଅଚ ଅର୍ଥାତ ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣ ସିଦ୍ଧାନ୍ତ କୌମୁଦି ଅନୁସାରେ |

[81] ଅ,ଆ,ଇ,ଉ,ଏ,ଓ- ଏ ଛଅଟି ଓଡିଆରେ ଶୁଦ୍ଧ ସ୍ୱରଧ୍ୱନି |ଐ/ଔ-ଏ ଦୁଇଟି ଦ୍ୱିସ୍ୱର ଧ୍ୱନି | ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ କଳନା, ପୃ-୬୪ |

[82]ସଂଘର୍ଷି/ଉଷ୍ମ ବ୍ୟଂଜନ ଧ୍ୱନି | ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ କଳନା, ପୃ-୭୦ |

ଅନୁବାଦ-: "ହ" କାର ଆଉ ରେଫ କୁ ଛାଡିକରି (ବିକଳ୍ପ) ଅନୁନାସିକ ଅମ ପ୍ରତ୍ୟାହାର ବର୍ଣ୍ଣ | ଅମ ପ୍ରତ୍ୟାହାର (ଅ, ଇ, ଉ, ଋ, ଲୃ, ଏ, ଓ, ଐ, ଔ, ୟ, ବ, ର, ଳ, ଞ, ମ, ଣ, ନ) ବର୍ଣ୍ଣ , ହକାର ଆଉ (ଫ, ଭ, ଘ, ଦ, ଧ) ନାଦ[83] ବର୍ଣ୍ଣ ଅଟନ୍ତି, ୟଣ (ୟ, ବ, ର, ଳ) ଆଉ ଜଶ (ଜ, ବ, ଗ, ଡ, ଦ) [84]ଅଳ୍ପନାଦ ବର୍ଣ୍ଣ ଅଟେ (ଖ, ଫ, ଛ, ଠ, ଥ) ଶ୍ୱାସ ବର୍ଣ୍ଣ ଅଟେ, ଚର (ଚ, ଟ, ତ, କ, ପ, ଶ, ଷ, ସ) ବର୍ଣ୍ଣ କୁ ଅଳ୍ପଶ୍ୱାସ[85] କହନ୍ତି,ଏହି ଶାସ୍ତ୍ର କୁ ବାଣୀ ସ୍ଥାନ କହନ୍ତି, ଯିଏ ଏହି ଶାସ୍ତ୍ରକୁ ଲୋକମାନଙ୍କ ମଧ୍ୟରେ ପ୍ରଚାର ପ୍ରସାର କଲେ ସିଏ ହେଉଛନ୍ତି ଆଚାର୍ଯ୍ୟ ଦାକ୍ଷୀପୁତ୍ର ପାଣିନୀ |୩୯/୪୦

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तः कल्पोऽथ पठ्यते ।

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१॥

ଅନ୍ୱୟः- ବେଦସ୍ୟ ପାଦୌ ତୁ ଛନ୍ଦଃ, ଅଥ ହସ୍ତୌ କଲ୍ପଃ, ପଠ୍ ଯତେ । ଚକ୍ଷୁଃ ଜ୍ୟୋତିଷାମୟନମ୍ ଶ୍ରୋତ୍ରଂ ର୍ନିରୁକ୍ତମ୍ ଉଚ୍ୟତେ ॥

ଅନୁବାଦ-: ଛନ୍ଦ ଶାସ୍ତ୍ରକୁ ବେଦ ପୁରୁଷର ପାଦ, କଳ୍ପ ଶାସ୍ତ୍ରକୁ ହାତ, ଜ୍ୟୋତିଷ ଶାସ୍ତ୍ରକୁ ଚକ୍ଷୁ, ନିରୁକ୍ତ ଶାସ୍ତ୍ରକୁ କର୍ଣ୍ଣ, ଶିକ୍ଷାଶାସ୍ତ୍ରକୁ ନାସିକା ଏବଂ ବ୍ୟାକରଣ ଶାସ୍ତ୍ରକୁ ମୁଖ କୁହାଯାଏ | ଏହି ଛଅଟି ଅଙ୍ଗ ସହିତ ବେଦପାଠ କଲେ ପାଠକ ବ୍ରହ୍ମ ଲୋକରେ ପୂଜିତ ହୋଇଥାଏ |୪୧

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।

तस्मात्साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४२॥

ଅନ୍ୱୟः- ବେଦସ୍ୟ ଘ୍ରାଣଂ ତୁ ଶିକ୍ଷା, ମୁଖଂ ବ୍ୟାକରଣଂ ସ୍ମୃତମ୍ । ତସ୍ମାତ୍ ସାଙ୍ଗମ୍ ଏବ ଅଧୀତ୍ୟ ବ୍ରହ୍ମଲୋକେ ମହୀୟତେ ॥

उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा।

उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव ।४३॥

---

[83] ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ କଳନା, ପୃ-୭୧|

[84] ଅଳ୍ପପ୍ରାଣ ସଘୋଷ ରେ ୧୬ ଧ୍ୱନି ଅଟେ ଜଶ ପ୍ରତ୍ୟାହାର ଏହାର ଅନ୍ତର୍ଗତ ଅଟେ | ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ କଳନା, ପୃ-୭୨|

[85] ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ କଳନା, ପୃ-୭୧

अन्वयः- अङ्गुलीनां वृषोः प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा उदात्तम् आख्याति । उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायाम् अनुदात्तम् एव आख्याति ॥

ଅନୁବାଦ-: ତର୍ଜନୀ ଅଙ୍ଗୁଳିମୂଳରେ ଅଗ୍ରଭାଗ ଯୋଡିହେଲେ ଉଦାତ୍ତସ୍ୱର ସୂଚୀତ କରିଥାଏ | ଅନାମିକା ମୂଳରେ ଅଗ୍ରଭାଗ ଯୋଡିହୋଇ ସ୍ୱରିତସ୍ୱର ସୂଚୀତ କରିଥାଏ, ମଧ୍ୟମାମୂଳରେ ଅଗ୍ରଭାଗ ଯୋଡିହୋଇ ପ୍ରଚୟ ସ୍ୱର ସୂଚୀତ କରିଥାଏ, କନିଷ୍ଠିକା ମୂଳରେ ଅଗ୍ରଭାଗ ଯୋଡିହୋଇ ଅନୁଦାତ୍ତ ସ୍ୱର ସୂଚୀତ କରିଥାଏ |[86]୪୨/୪୩

उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात्प्रचयो मध्यतोङ्गुलीम् ।

निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ॥ ४४॥

अन्वयः- उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात्, प्रचयं मध्यतोङ्गुलीम् । निहतं तु कनिष्ठिक्याम् स्वरित उपकनिष्ठिकाम् ॥

ଅନୁବାଦ-: ଉଦାତ୍ତସ୍ୱରକୁ ତର୍ଜନୀଦ୍ୱାରା ସଙ୍କେତ କରାଯାଏ, ପ୍ରଚୟସ୍ୱରକୁ ମଧ୍ୟମା ଅଙ୍ଗୁଳି ଦ୍ୱାରା ସଙ୍କେତ କରାଯାଏ, ଅନୁଦାତ୍ତ ସ୍ୱରକୁ କନିଷ୍ଠିକା ଅଙ୍ଗୁଳି ଦ୍ୱାରା ସଙ୍କେତ କରାଯାଏ, ସ୍ୱରିତ ସ୍ୱରକୁ ଉପକନିଷ୍ଠିକା ଦ୍ୱାରା ସଙ୍କେତ କରାଯାଏ |[87]୪୪

अन्तोदात्तमाद्युदत्तमुदात्तमनुदातं नीचस्वरितम्।

मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नवपदशय्या ॥ ४५॥

अन्वयः- अन्तोदात्तम् आद्युदात्तम् उदातम् अनुदातं नीचस्वरितं मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तं इति नव पदशय्या ॥

[86] ଓଡିଆ ସ୍ୱର ଧ୍ୱନିର ବିଭାଗୀକରଣରେ ବର୍ଣ୍ଣନା କରାଯାଇଛି | ଓଡିଆବ୍ୟାକରଣ କଳନା, ପୃ ୫୨-୬୪|

[87] ଓଡିଆ ସ୍ୱର ଧ୍ୱନିର ବିଭାଗୀକରଣରେ ବର୍ଣ୍ଣନା କରାଯାଇଛି | ଓଡିଆବ୍ୟାକରଣ କଳନା, ପୃ ୫୨-୬୨|

ଅନୁବାଦ-: ସ୍ୱରର ଶୟନ (ଅର୍ଥାତ ଅବସ୍ଥିତି) ପଦରେ ନଅପ୍ରକାରର ହୋଇଥାଏ, ସେଗୁଡିକହେଲା- ୧-ଅନ୍ତୋଦାତ୍ତ; ୨- ଆଦିଉଦାତ୍ତ; ୩- ଉଦାତ୍ତ; ୪-ଅନୁଦାତ୍ତ; ୫- ନୀଚସ୍ୱରିତ; ୬-ମଧ୍ୟୋଦାତ୍ତ; ୭-ସ୍ୱରିତ; ୮-ଦ୍ୱ୍ୟୁଦାତ୍ତ; ୯-ତ୍ରିଦାତ୍ତ | ୪୫

अग्निः बोमः प्रवो वीर्यँ हविषं स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती।

अग्निरित्यन्तोदात्तं सोम इत्याद्युदत्तं प्रेत्युदात्तं दीर्घँ नीचस्वरितम् ॥ ४६॥

अन्वयः- अग्निः सोमः प्र वःवीर्यँ हविषां स्वः बृहस्पतीः इन्द्रा बृहस्पती । अग्निः इति अन्तोदात्तम् सोमः इति आदिद्युदत्तम्, प्रा इति उदात्तम्, वः इति अनुदातम्, वीर्यम् इति नीच स्वरितम् ॥

ଅନୁବାଦ-: ଅଗ୍ନିଃ, ସୋମଃ, ପ୍ର, ବଃ, ବୀର୍ଯମ, ହବିଷାମ, ସ୍ୱଃ, ବୃହସ୍ପତିଃ, ଇନ୍ଦ୍ରାବୃହସ୍ପତି, ଏହା କ୍ରମାନୁସାରେ ଉଦାହରଣ ଦିଆଗଲା | ଅଗ୍ନିଃ- ଏହି ପଦ ଅନ୍ତୋଦାତ୍ତ, ସୋମଃ- ଏହି ପଦ ଆଦି ଉଦାତ୍ତ, ପ୍ର- ଏହି ପଦ ଉଦାତ୍ତ, ବଃ- ଏହି ପଦ ଅନୁଦାତ୍ତ, ବୀର୍ଯମ- ଏହି ପଦ ନୀଚସ୍ୱରିତ (ଏଠାରେ ବୀର ଅନୁଦାତ୍ତ ଯମସ୍ୱରିତ୍ତ), ହବିଷାମ-ଏହିପଦ ମଧ୍ୟୋଦାତ୍ତ, ସ୍ୱଃ-ଏହିପଦ ସ୍ୱରିତ୍ତ, ବୃହସ୍ପତି-ଏହିପଦ ଦ୍ୱ୍ୟୁଦାତ୍ତ (ବୃ ଆଉ ପ ଦୁଇଟି ଅକ୍ଷର ଉଦାତ୍ତ), ଇନ୍ଦ୍ରା ବୃହସ୍ପତି- ଏହି ପଦ ତ୍ର୍ୟୁଦାତ୍ତ (ଇନ, ବୃ, ପ ତିନୋଟି ଅକ୍ଷର ଉଦାତ୍ତ ଅଟେ)|୪୬

हविषां मध्योदात्तंस्वरिति स्वरितं बृहस्पतिरिति ।

द्व्युदात्तमिन्द्राबृहस्पती इति त्रुदात्तम् ॥ ४७॥

अन्वयः- हविषां इति मध्योदात्तम्, स्वः इति स्वरितम्,बृहस्पतिः इति द्व्युदात्तम्, इन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदातम्॥

अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः।

स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥ ४८॥

अन्वयः- हृदि अनुदात्त ज्ञेयः, मुर्ध्नि उदात्तः उदाहृतः कर्णमूलीयः स्वरितः प्रचयः सर्वास्ये स्मृतः॥

ଅନୁବାଦ-: ଅନୁଦାତ୍ତ ସ୍ୱରକୁ ହୃଦୟ ପ୍ରଦେଶରେ (ହସ୍ତ ରଖିକରି) ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ | ଉଦାତ୍ତ ସ୍ୱରକୁ ଶିରପ୍ରଦେଶରେ (ହସ୍ତ ରଖି) ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ, ସ୍ୱରିତ ସ୍ୱରକୁ କର୍ଣ୍ଣମୂଳ ପ୍ରଦେଶରେ (ହସ୍ତ ରଖିକରି) ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଉଚିତ ଏବଂ ପ୍ରଚୟସ୍ୱରକୁ ମୁଖ ପ୍ରଦେଶରେ ହସ୍ତ ରଖି ଉଚ୍ଚାରଣ କରିବା ଆବଶ୍ୟକ |[୪୫]୪୭/୪୮

चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रो चैव वायसः।

शिखी रौति त्रिमात्रस्तु नकुलस्त्वर्धमात्रकः ॥ ୪୯॥

ଅନ୍ୱୟଃ- चाष तु मात्रां वदते, वायसः द्विमात्रं एव च । शिखी तु त्रिमात्रं रौति, नकुलः तु अर्धमात्रकम् ॥

ଅନୁବାଦ-: ନୀଳକଣ୍ଠ ପକ୍ଷୀ ଏକମାତ୍ର ବିଶିଷ୍ଟ ଶବ୍ଦ ଉଚ୍ଚାରଣ କରେ, କୁଆ ଦ୍ୱିମାତ୍ରିକ ବିଶିଷ୍ଟ ଶବ୍ଦ ଉଚ୍ଚାରଣ କରେ, ମୟୂର ତିନିମାତ୍ରା ବିଶିଷ୍ଟ ଶବ୍ଦ ଉଚ୍ଚାରଣ କରେ, ନେଉଳ ଅର୍ଦ୍ଧମାତ୍ରା ବିଶିଷ୍ଟ ଶବ୍ଦ ଉଚ୍ଚାରଣ କରେ, ଏଠାରେ ପଶୁପକ୍ଷୀଙ୍କ ନିର୍ଦ୍ଦେଶାନୁସାରେ ହ୍ରସ୍ୱ ଦୀର୍ଘାଦି ଉଚ୍ଚାରଣ ଜ୍ଞାନ ହୋଇଥାଏ |୪୯

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् ।

न तस्य पठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात् ॥ ୫୦॥

ଅନ୍ୱୟଃ- କୁତୀର୍ଥାତ୍ ଆଗତଂ ଦଗ୍ଧମ୍ ଅପବର୍ଣ ଭକ୍ଷିତଂ ଚ । ତସ୍ୟ ପାଠେ ପାପାହେଃ ଇବ କିଲ୍ବିଷାତ୍ ମୋକ୍ଷଃ ନ ଅସ୍ତି ॥

ଅନୁବାଦ-: ଉଚ୍ଚାରଣ ଗୁଣ ଦୋଷଯୁକ୍ତ ଅନଭିଜ୍ଞ ଓ ଅଯୋଗ୍ୟ ଅଧ୍ୟାପକ ପାଖରେ ପଢୁଥିବା ବ୍ୟକ୍ତି ଦଗ୍ଧରଜ୍ଜୁ ଯେଉଁଭଳି ଆଭାସମାତ୍ର ଏବଂ ସ୍ୱକାର୍ଯ୍ୟ, ଅସମର୍ଥ, ବର୍ଣ୍ଣ ବିକଳ, ଅସ୍ପଷ୍ଟୋଚ୍ଚାରିତ ଭାବରେ ବେଦ ଅଧ୍ୟୟନ ଓ ଅଧ୍ୟାପନା କରିଥାନ୍ତି, ସେହିମାନେ କୃଦ୍ଧ ଗୋମନ ସର୍ପ ଯେପରି ଛାଡି ଯାଇ ନ ଥାଏ ସେହିପରି ପାପରୁ ସେମାନଙ୍କୁ ମୁକ୍ତି ମିଳି ନ ଥାଏ | ୫୦

सुतिर्थदागतं व्यक्तं स्वाम्नाय्यं सुव्यवस्थितम् ।

सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥ ୫୧॥

[୪୫] ଉଚ୍ଚାରଣ ଦୃଷ୍ଟିରୁ ସ୍ୱରଧ୍ୱନିକୁ ୨ ଭାଗ ରେ ବିଭକ୍ତ କରାଯାଇଅଛି | ଓଡିଆ ବ୍ୟାକରଣ କଳନା, ପୃ ୫୨|

अन्वयः- सुतिर्थद् आगतं व्यक्तं स्वाम्नातं सुव्यवस्थितम् सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥

ଅନୁବାଦ-: ଯେପରି ଗୁରୁଙ୍କର ମୁଖରୁ ଉଚ୍ଚାରଣ ଶୁଣି ଶିଷ୍ୟ ସେହିପରି ସମାନ ଉଚ୍ଚାରଣ କରିଥାଏ, ଗୁରଙ୍କର ଶ୍ରବଣ ଗୋଚର ସ୍ଥଳରେ ରହି ଶିଷ୍ୟ ସେହିପରି ଅଭ୍ୟାସ କରେ ଏବଂ ଅଙ୍ଗସହିତ ବେଦ ଅଧ୍ୟୟନ କରେ ଯାହା ଫଳରେ ଶିଷ୍ୟ ଗୁଣ ଦୋଷାଦି ଉଚ୍ଚାରଣ ଜ୍ଞାନରେ ଅଭିଜ୍ଞ୍ୟ ହୋଇଯାଏ | ସଦଗୁରୁଙ୍କ ଠାରୁ ବିଧିବତ ପ୍ରାପ୍ତ ଜ୍ଞାନ ସ୍ପଷ୍ଟରୂପରେ ଅଧ୍ୟୟନ କରେ ଓ କଣ୍ଠସ୍ଥକରି ମଧୁରସ୍ୱରରେ ଉଚ୍ଚାରଣ କରେ | ଏହିଭଳି ସୁନ୍ଦର ଭାବରେ ଦାନ୍ତୋଷ୍ଠାଦି ମୁଖ ମଣ୍ଡଳ ଦ୍ୱାରା ଉଚ୍ଚାରିତ ବେଦ (ଶବ୍ଦ-ଅର୍ଥ-ପ୍ରଭାବ ଦ୍ୱାରା) ଶୋଭାବର୍ଦ୍ଧନ କରିଥାଏ |୫୧

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तदर्थमाह ।

स वग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ ५२॥

अन्वयः- स्वरतः वर्णतः वा हीनः मिथ्याप्रयुक्तः मन्त्रः तम् अर्थं न आह । सः वाग्वज्रः स्वरतः अपराधात् इन्द्रशत्रुः यथा यजमानं हिनस्ति ॥

ଅନୁବାଦ-: ସ୍ୱର ଏବଂ ବର୍ଣ୍ଣରେ ଅପକୃଷ୍ଟ ମନ୍ତ୍ର ମିଥ୍ୟାପ୍ରଯୁକ୍ତ ହୋଇ ପ୍ରକୃତ ଅର୍ଥକୁ ପ୍ରକଟ (ସୂଚୀତ) କରି ନଥାଏ| ଏହା ବାଗବଜ୍ର[89] ସୃଷ୍ଟି ହୋଇ ଯଜମାନକୁ ହିଁ ବିନାଶ କରିଥାଏ | ଏହାର ଉଦାହରଣ ଦିଆଯାଇଛି – ସ୍ୱରାପରାଧକୃତ –"ଇନ୍ଦ୍ରଶତ୍ରୁ" ପଦର ଉଚ୍ଚାରଣ କରାଯାଇଛି |୫୨

अवक्षरं हतायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम् ।

अक्षता शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥ ५३॥

अन्वयः- अवक्षर ह्यनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम् । अक्षता शस्त्ररूपेण मस्तके वज्रं पतति ॥

ଅନୁବାଦ-: ଯଦି ମନୁଷ୍ୟ ଅକ୍ଷର[90] ବିକଳ ହୋଇ ବେଦକୁ ଉଚ୍ଚାରଣ କରେ, ତେବେ ଉଚ୍ଚାରୟିତାକୁ ଆୟୁଷହୀନତା ହୋଇଥାଏ, ସ୍ୱର ବିକଳ ହେଲେ ଉଚ୍ଚାରିତ ବେଦ ଉଚ୍ଚାରୟିତାକୁ ରୋଗରେ ପୀଡିତ

[89] ସଂସ୍କୃତ ଶବ୍ଦ.,ଅମର କୋଷ

[90] ଭାଷାବିଜ୍ଞାନ ଅନୁସାରେ ଇଂରାଜୀରେ ସିଲାବଲ/syllable ଶବ୍ଦଟି ପ୍ରାୟତଃ ଓଡିଆର 'ଅକ୍ଷର' ପଦବାଚ୍ୟ ଅଟେ | ଓଡିଆଭାଷା ଓ ଯୋଗାଯୋଗ ଡିପ୍ଲୋମା କାର୍ଯ୍ୟକ୍ରମ ୧.୩.୪ |

କରିଥାଏ, ଅକୁଣ୍ଠିତ ଅଶସ୍ତ୍ର (ବର୍ଣ୍ଣ-ସ୍ୱର-ବିକଳ-ବେଦବାଣୀ) ବେଦ ଉଚ୍ଚାରଣ କଲେ ଉଚ୍ଚାରୟିତାର ମୁଣ୍ଡରେ ବଜ୍ର ପଡିଥାଏ | ୫୩

ହସ୍ତହୀନଂ ତୁ ଯୋଽଧୀତେ ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣବିବର୍ଜିତମ୍ ।

ଋଗ୍ୟଜୁଃସାମଭିର୍ଦଗ୍ଧୋ ବିଯୋନିମଧିଗଚ୍ଛତି ॥ ୫୪॥

ଅନ୍ୱୟଃ– ଯଃ ତୁ ହସ୍ତହୀନଂ ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣବିବର୍ଜିତମ୍ ଅଧୀତେ ଋଗ୍ ଯଜୁଃ ସାମଭିଃ ଦଗ୍ଧଃ ସଃ ବିଯୋନିମ୍ ଅଧିଗଚ୍ଛତି ॥

ଅନୁବାଦ-: ଯେଉଁ ବ୍ୟକ୍ତି ହସ୍ତକୃତ ସ୍ୱର ନିର୍ଦ୍ଦେଶାନୁସାରେ ଯଦି ଉଦାତ୍ତାଦି ସ୍ୱର ଏବଂ ଅକାରାଦି ବର୍ଣ୍ଣ ବର୍ଜିତ ହୋଇ ବେଦ ପଠନ କରିଥାଏ, ସେହି ବ୍ୟକ୍ତି (ଋକ-ଯର୍ଜୁ-ସାମ) ବେଦରେ ଦଗ୍ଧ ହୋଇ ମ୍ଲେଚ୍ଛ-ପଶୁ-ପକ୍ଷୀ-ସରୀସୃପ-କୀଟ-କୃମି-ସ୍ଥାବର ବିଶେଷାଦି ନୀଚ ଯୋନିକୁ ପ୍ରାପ୍ତ କରିଥାଏ | ୫୪

ହସ୍ତେନ ବେଦଂ ଯୋଽଧୀତେ ସ୍ୱରବର୍ଣାର୍ଥସଂଯୁତମ୍।

ଋଗ୍ୟଜୁଃସାମଭିଃ ପୂତୋ ବ୍ରହ୍ମଲୋକେ ମହୀୟତେ ॥ ୫୫॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଯଃସ୍ୱର-ବର୍ଣାର୍ଥସଂଯୁତମ୍ ହସ୍ତେନ ବେଦମ୍ ଅଧୀତେ (ସଃ) । ଋଗ୍ୟଜୁଃସାମଭିଃ ପୂତଃ ବ୍ରହ୍ମଲୋକେ ମହୀୟତେ ॥

ଅନୁବାଦ-: ବେଦର ଯେଉଁ ଅଧ୍ୟେତା ଉଦାତ୍ତାଦି ସ୍ୱରଠାରୁ "ଅ"କାର ବର୍ଣ୍ଣ ଓ ଅର୍ଥଜ୍ଞାନ ସହ ଅବିକଳ ସ୍ୱରାଦି ନିର୍ଦ୍ଦେଶିତ ସହିତ ଅଧ୍ୟୟନ କରେ ସେହି ଅଧ୍ୟେତା – ପଦବଦ୍ଧ ମନ୍ତ୍ର ରୂପ ଋକ, ଗଦ୍ୟ ମନ୍ତ୍ର ରୂପ ଯର୍ଜୁ ,ଏବଂ ଗାନମନ୍ତ୍ର ରୂପ ସାମବେଦରେ ପରିପୂର୍ଣ୍ଣ ହୋଇ ବ୍ରହ୍ମ ଲୋକରେ ପୂଜିତହୋଇଥାଏ | ୫୫

ଶଙ୍କରଃ ଶାଙ୍କରୀଂ ପ୍ରାଦାଦ୍ଦାକ୍ଷୀପୁତ୍ରାୟଧୀମତେ।

ବାଙ୍ମୟେଭ୍ୟଃ ସମାହୃତ୍ୟ ଦେବୀଂ ବାଚମିତି ସ୍ଥିତିଃ ॥ ୫୬॥

ଅନ୍ୱୟଃ- ଶଙ୍କରଃ ବାଙ୍ମୟେଭ୍ୟଃ ସମାହୃତ୍ୟ ଶାଙ୍କରୀଂ ଦେବୀଂ ବାଚଂ ଧୀମତେ ଦାକ୍ଷୀପୁତ୍ରାୟ ପ୍ରାଦାତ୍ ଇତି ସ୍ଥିତିଃ॥

ଅନୁବାଦ-: ଶଙ୍କର ଶ୍ରୁତି-ସ୍ମୃତି-ପୂରାଣାଦି ବାଙ୍ମୟ ସମସ୍ତ ସାରତତ୍ତ୍ୱକୁ ନେଇ କଲ୍ୟାଣ-କାରିଣୀ ଏହି ବର୍ଣ୍ଣ ସମାମ୍ନାୟରୂପ ବାଣୀକୁ ବୁଦ୍ଧିମାନ ଦାକ୍ଷୀପୁତ୍ର ପାଣିନୀକୁ ଦେଲେ | ଏହି ପାଣିନୀ ବ୍ୟାକରଣ ଜଗତରେ ବହୁ ଚର୍ଚ୍ଚିତ ହେଲେ |୫୬

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।

कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५७॥

ଅନ୍ୱୟः- येन महेश्वरात् अक्षरसमाम्नायं अधिगम्य कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं, तस्मै पाणिनये नमः ॥

ଅନୁବାଦ-: ଯିଏ ମହେଶ୍ୱରଠାରୁ ସମାମ୍ନାୟରୂପ ସୂତ୍ର ପ୍ରାପ୍ତକରି ସମ୍ପୂର୍ଣ୍ଣ ବ୍ୟାକରଣ ଶାସ୍ତ୍ର ପ୍ରଦାନ କଲେ ସେହି ପାଣିନୀ ମୁନୀଙ୍କୁ ନମସ୍କାର |୫୭

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।

तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५८॥

ଅନ୍ୱୟः- येन विमलैः शब्दवारिभिः पुंसां गिरः धौता, अज्ञानजं तमश्च भिन्नम्, तस्मै पाणिनये नमः॥

ଅନୁବାଦ-: ଜିଏ ଶୁଦ୍ଧ ଶବ୍ଦରୂପୀ ଜଳଦ୍ୱାରା ମନୁଷ୍ୟର ବାଣୀକୁ ନିର୍ମଳ କରିଥିଲେ ଏବଂ ଅଜ୍ଞାନ ଜନିତ ଅନ୍ଧକାରକୁ ହଟାଇ ଦେଲେ ସେହି ପାଣିନୀ ମୁନୀଙ୍କୁ ନମସ୍କାର କରୁଛି |୫୮

अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५९॥

ଅନ୍ୱୟः– येन ज्ञानाञ्जनशलाकया अज्ञानान्धस्य लोकस्य चक्षुः उन्मीलितम्, तस्मै पाणिनये नमः॥

ଅନୁବାଦ-: ଯିଏ ଶୁଦ୍ଧଶବ୍ଦରୂପୀ ଜ୍ଞାନ ଦ୍ୱାରା ଅଜ୍ଞାନୀ ଲୋକଙ୍କର ବାଣୀକୁ ପବିତ୍ର କଲେ ଓ ଅନ୍ଧାର ଦୂରକରି ନୟନ ଖୋଲିଲେ ସେହି ପାଣିନୀ ମୁନୀଙ୍କୁ ନମସ୍କାର କରୁଛି |୫୯

त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमां य इह पठेत्प्रयतश्च सदा द्विजः।

स भवति धनधान्यपशुपुत्रकीर्तिमानमतुलं च सुखं समश्नुते दिवीति दिवीति ॥ ६०॥

अन्वयः- यः द्विजः प्रयतः (भूत्वा) सदा त्रिनयनमुखनिःसृताम् इमां पठेत्, सः इह धनधान्यकीर्तिमान् भवति, दिवि च अतुलं सुखं समश्नुते ॥

ଅନୁବାଦ-: ଯେଉଁ ଦ୍ୱିଜାତି ପ୍ରଯତ୍ନକରି ଶଙ୍କରଙ୍କ ମୁଖଦ୍ୱାରା ନିସୃତ ଶିକ୍ଷାକୁ ସର୍ବଦା ପଠନ କରିଥାଏ ସେହି ଲୋକ ଧନ–ଧାନ୍ୟ–କୀର୍ତ୍ତି ପୂର୍ଣ୍ଣ ହୋଇଥାଏ ଏବଂ ଦ୍ୟୁଲୋକରେ ଅତୁଲ୍ୟ ସୁଖ ଓ ସାଲୋକ୍ୟ ମୁକ୍ତି କୁ ପ୍ରାପ୍ତ କରିଥାଏ | ୬୦

ଅନୁବାଦର ଶବ୍ଦ ସମସ୍ୟା

ସଂସ୍କୃତ ଭାଷାରୁ ଓଡିଆ ଭାଷାକୁ ଅନୁବାଦ କରିବା ସମୟରେ କେତେକ ସଂସ୍କୃତଶବ୍ଦ ଯାହାର ସମାନ ଶବ୍ଦ ଓଡିଆ ଭାଷାରେ ମିଳିପାରି ନାହିଁ ସେଠାରେ ମୁଁ ସଂସ୍କୃତ ଶବ୍ଦ ଅଥବା ହିନ୍ଦି ଶବ୍ଦର ପ୍ରୟୋଗ କରିଛି | ଅନେକ ପ୍ରକାର ଶବ୍ଦକୋଷ, ବ୍ୟାକରଣପୁସ୍ତକ ଅନୁସନ୍ଧାନ କରିସାରିବା ପରେ ମଧ୍ୟ କେତେକ ସଂସ୍କୃତଶବ୍ଦ ଅଛି ଯାହାର କି ଓଡିଆ ଶବ୍ଦ ପାଇବା ମୋ ପାଇଁ କଷ୍ଟସାଧ୍ୟ ହୋଇଛି, ଯାହାଫଳରେ ସେହି ସଂସ୍କୃତ ଶବ୍ଦ ଗୁଡିକ ଲଘୁଶୋଧପ୍ରବନ୍ଧରେ ମୁଁ ପ୍ରୟୋଗ କରିଛି |

तृतीय अध्याय

अनुवाद और अनुवाद-चिन्तन की परम्परा

3.1. अनुवाद शब्द : अर्थ और व्युत्पत्ति

अनुवाद एक यौगिक शब्द है। 'वद्' धातु में 'घञ्'[91] प्रत्यय लगने से 'वाद' शब्द बनता है। 'वद्' धातु का अर्थ है बोलना या कहना। 'वाद' शब्द में 'अनु' उपसर्ग के जुड़ने से 'अनुवाद' शब्द बनता है। 'अनु' उपसर्ग अनुवर्तिता के अर्थ में व्यवहृत होता है। इस तरह पूरे 'अनुवाद' शब्द का मूल अर्थ है पुनः कथन या किसी के कहने के पश्चात् कहना। इस कहने में अर्थ की ही पुनरावृत्ति होती है, शब्द की नहीं। दूसरे शब्दों में इसे अर्थ का भाषांतरण भी कहा जा सकता है। अंग्रेजी में अनुवाद के लिए ट्रांसलेशन (**Translation)** शब्द प्रयुक्त होता है, जो प्राचीन फ्रांसीसी शब्द 'ट्रांसलेटेर' से बना है, जिसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है- 'परिवहन' यानी एक स्थान से दूसरे स्थान-बिंदु पर ले जाना। यह स्थान बिंदु भाषिक पाठ है, इसमें ले जाने वाली चीज अर्थ होती है, शब्द नहीं। ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश में इसका मुख्यार्थ निम्नांकित है- **"The process of translating words or text of one language into another language (as translated Homer into English from the Greek.)**[92]

ट्रांसलेशन में मूलभाषा के अर्थ को अन्य भाषा (लक्ष्यभाषा) में रूपांतरित करने की प्रक्रिया पर बल दिया जाता है।

'अनुवाद' शब्द भारतीय साहित्य में कोई नया नहीं है। यह संस्कृत का शब्द है, जिसका प्रयोग बहुत प्राचीन समय से होता आ रहा है। आधुनिक काल में इसके अर्थ में परिवर्तन हुआ है। अनुवाद के लिए 'छाया' शब्द भी बड़ा पुराना है। प्राचीन भारतीय शिक्षा की गुरु-शिष्य परंपरा में गुरु के कहे हुए वचन को शिष्य दोहराता था। दोहराने की यह क्रिया 'अनुवचन' या 'अनुवाद' कहलाती थी। वेद भी तो श्रुति-शिष्य-परंपरा की ही निधि है, जिसे शिष्य ने गुरु के मुख से सुन-सुनकर कंठस्थ किया, फिर उसने अपने शिष्यों को सुनाया और इस प्रकार शिष्योपशिष्य सुन-सुनकर कंठस्थ करने की यह परंपरा चलती रही। 'प्राप्तस्य पुनः कथने' या 'ज्ञातार्थस्य प्रतिपादने'[93], जिसका अर्थ है- पूर्व में कथित अर्थ का पुनर्कथन। वैदिक

---

[91] भावे,पाणिनि सूत्र ३.३.१९

[92] Oxford English Dictionary

[93] शब्दार्थ चिंतामणि कोश

संस्कृत से लेकर लौकिक संस्कृत के अनेक ग्रंथों में अनुवाद शब्द 'ज्ञात का कथन' या 'कही गयी बात को दुहराने' के अर्थ में बार-बार आया है। संस्कृत में 'गुणानुवाद'[94] (गुण+अनुवाद) शब्द का प्रयोग भी गुण के पुनः -पुनः कथन के ही अर्थ में हुआ है, किंतु, 'अनुवाद' का प्रचलित अर्थ पुनः कथन से कहीं पुनरुक्ति समझ लिया गया, तो बड़ी भूल होगी, क्योंकि अनुवाद पुनरुक्ति नहीं है, बल्कि 'पुनर्सृजन का कार्य है। साहित्यिक कृति के अनुवाद को तो एजरा पाउंड ने 'साहित्यिक पुनर्जीवन' की संज्ञा दी है। आजकल तो 'साहित्यिक अनुवाद' की जगह 'साहित्यिक पुनर्सर्जना(**Literary recreation)** शब्द ही प्रचलन में है।[95]

'अनुवाद' के लिए भारतीय भाषाओं में पर्याप्त रूप में कई शब्दों का प्रयोग होता रहा है। उदाहरणार्थ हिंदी, उड़िया, असमिया, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं में तो 'अनुवाद' शब्द चलता है, किंतु बंगला, कन्नड़, सिंधी में अनुवाद शब्द के अलावा क्रमशः तर्जमा, भाषांतर, तर्जमो-शब्दों का प्रयोग भी होता है। कश्मीरी में तर्जमा, मलयालम में 'विवर्तन', 'तर्जुमा', तमिल में 'मोषिये चर्त्यु', व तेलुगु में "अनुवादम्" और उर्दू में 'तर्जमा' शब्द प्रचलित है। अज्ञेय के अनुसार समस्त अभिव्यक्ति अनुवाद है क्योंकि वह अव्यक्त या अदृश्यादि को भाषा या रेखा या रंग में प्रस्तुत करती है। किंतु प्रचलित अर्थ में एक भाषा में प्रकट किये गए विचारों को किसी दूसरी भाषा में यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाना अनुवाद कहलाता है। मूलतः जिस भाषा में विचार प्रकट किये गए वह स्रोत भाषा (**Source Language)** कहलाती है और स्रोतभाषा के विचार जिस किसी भाषा में रूपांतरित किये जाते हैं, वह लक्ष्यभाषा (**Target Language)** कही जाती है। अनुवाद के स्वरुप को समझने के लिए कुछ मुख्य दृष्टिकोणों पर आधारित परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

एक भाषा में व्यक्त विचारों को, यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है।[96]

डॉ. तिवारी ने अपनी उपर्युक्त परिभाषा की व्याख्या अनुवाद की वास्तविक प्रक्रिया दृष्टि से करते हुए यह कहा है- "भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद है इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के निकटतम समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग। इस प्रकार डॉ. तिवारी के अनुसार अनुवाद कथनतः और कथ्यतः निकटतम सहज प्रतिप्रतीकन है। उपर्युक्त कतिपय परिभाषाओं के विश्लेषण से अनुवाद की बहुपक्षीयता पर प्रकाश पड़ता है। अनुवाद एक श्रेष्ठ कला के साथ प्रक्रिया में

---

[94] अकसवर्णे दीर्घ,अष्टध्यायी

[95] अनुवादविज्ञान,पृ १२

[96] अनुवादविज्ञान, पृ १३

विज्ञान है तथा उसकी सफलता एक कुशल शिल्पी होने पर निर्भर करने के कारण यह एक शिल्प भी है। अनुवाद का मूल लक्ष्य है स्रोतभाषा की सामग्री को लक्ष्यभाषा में यथासंभव अपने मूल रूप में लाना और दूसरी बात कि यह है की अनुवाद के लिए स्रोतभाषा में सामग्री को प्रकट करने के लिए जिस संरचना का प्रयोग है उसके यथासंभव समान अभिव्यक्ति या संरचना की खोज लक्ष्यभाषा में है। उपर्युक्त परिभाषाओं से यह भी संकेत मिलता है कि विभिन्न उद्देश्यों के अनुरूप अनुवाद की परिभाषाएँ भी भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। उपर्युक्त परिभाषाओं से सार रूप में जो बातें अनुवाद का परिचय कराती हैं, वे निम्नांकित हैं-

१. स्रोतभाषा की सामग्री लक्ष्यभाषा में संपूर्णता में प्रकट हो।

२. सामग्री के साथ प्रस्तुति के ढंग में भी समानता हो।

३. मूलभाषा से लक्ष्यभाषा में रूपांतरित करने में स्वाभाविकता का निर्वाह अनिवार्यतः हो।

४. अनुवाद में प्रतिस्थापन, पुनरावृत्ति, स्थानांतरण या परिवर्तन की प्रकृति होती है।

५. लक्ष्यभाषा में व्यक्त विचारों में ऐसी सहजता हो कि वह मूलभाषा पर आधारित न होकर स्वयं मूलभाषा होने का एहसास पैदा करे। कहा जा सकता है कि अनुवाद एक भाषा में व्यक्त भावों और विचारों को दूसरी भाषा में रूपांतरित करने की विशेष प्रक्रिया है, जो अपने कौशल के कारण किसी कला से प्राप्तव्य सौंदर्य को अपने स्वरूप में इस प्रकार समाहित करलेता है कि मूलभाषा (स्रोतभाषा) और लक्ष्यभाषा का भेद प्रायः समाप्त हो जाता है। इस प्रकार अनुवादकला, विज्ञान और शिल्प की विशिष्टताओं से युक्त होते हुए, किसी अनुवादक के समक्ष एक चुनौती बनकर इस अपेक्षा के साथ प्रस्तुत होता है कि वह तभी अनुवाद कार्य में प्रवृत हो, जब वह स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा की प्रकृति का परिचय रखता हो, तथा विषय का अच्छा ज्ञाता हो। इसी कारण विद्वान् यह मानते हैं कि एक लेखक होने की अपेक्षा एक अनुवादक होना अत्यंत कठिन है तथा हर कृति अनुवादयोग्य है, किंतु हर कृति का अच्छा अनुवाद नहीं किया जा सकता।[97]

3.2. अनुवाद का इतिहास

प्राचीन भारत में शिक्षा की एक मौलिक परंपरा थी । गुरु जो कहते थे, शिष्य उसे दोहराते थे। इस दोहराने को भी 'अनुवाद' या 'अनुवचन' कहते थे। 'अनुवाक्' भी मूलतः यही था, यद्यपि बाद में इसका अर्थ वेद का कोई प्रभाग (**Section)** हो गया । मूलतः कदाचित् उतना भाग जिसे एक बार गुरु से सुनकर दोहराया या पढ़ा-सीखा जा सके ।

[97] अनुवाद-विज्ञान पृ७-१२।

वैदिक संस्कृत के प्राचीनतम रूप में उपसर्ग का प्रयोग मूल क्रिया से अलग होता रहा है, बाद में दोनों को मिलाकर प्रयोग किया जाने लगा। 'अनुवाद' के 'अनु' और 'वद्' का भी अलग प्रयोग मिलता है। अन्वेको वदति यद्दाति [98]।।

यहाँ भी 'अनुवदति' का अर्थ है 'दोहराता है' या 'पीछे से कहता है' । ऋग्वेद में एक अन्य स्थान पर आया है रोचनादधि[99] इस पर सायण कहते हैं "अधिः पंचम्यर्थानुवादी"[100]। अर्थात् 'अधिः पंचमी के अर्थ को ही दोहरा रहा है। इस तरह सायण ने भी इसका प्रयोग दुहराने के लिए ही किया है। ब्राह्मण ग्रंथों में 'दुबारा कहना' या 'पुनःकथन' अर्थ में अनुवाद का प्रयोग कई स्थलों पर मिलता है।

यद् वाचि प्रोदितायाम् अनुब्रूयाद् अन्यस्यैवैनम्

उदितानुवादिनम् कुर्यात्[101]| तांड्य ब्राह्मण में भी 'अनुवाद' आता है।[102]

उपनिषदों में भी अनु+वद् का प्रयोग कई व्याकरणिक रूपों में मिलता है।

तद् एतद् एवैषा देवी वाग् अनुवदति स्तनयित्नुः द द द इति[103] । यास्क के निरुक्त में आता है-

कालानुवादं परीत्य[104] । अर्थात् (सविता के) समय को कहने को जानकर (दुर्ग)। यहाँ 'अनुवाद' का अर्थ 'कहना' या 'ज्ञात को कहना' है। निरुक्त में ही अन्यत्र इसका प्रयोग 'दोहराने'[105] के अर्थ में हुआ है-

यथा एतद् ब्राह्मणेन रूपसंपन्न विधीयन्त इत्युदितानुवादः स भवति[106]। पाणिनी के अष्टाध्यायी में भी 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग मिलता है। अनुवादे चरणानाम्[107] इस सूत्र के अनुवाद' शब्द की भट्टोजि दीक्षित व्याख्या करते हैं । सिद्धस्य उपन्यासे अर्थात् 'ज्ञात बात को कहना । भट्टोजि पर वासुदेव दीक्षित की व्याख्या बालमनोरमा में आता है।अवगतार्थस्य

---

[98] ऋग्वेद (२.१३.३)

[99] ऋग्वेद (8.1.18)

[100] सायण उक्ति,अनुवादविज्ञान पृ. -९

[101] ऐतरेय ब्राह्मण (2.15)

[102] तांड्य ब्राह्मण (१५.५.१७)

[103] वृहदारण्यक उपनिषद् (५.२.३)

[104] निरुक्त १२.१३

[105] निरुक्त १.१६

[106] निरुक्त

[107] अष्टाध्यायी २.४.३

प्रतिपादने इत्यर्थः[108] ।। यहाँ भी इसका अर्थ 'ज्ञात को कहना' ही है। पाणिनी के उपर्युक्त सूत्र पर महाभाष्यकार के कथन की टीका में कयट कहते हैं-

"यदा प्रतिपत्ता प्रमाणान्तरावगतमप्यर्थ कार्यान्तरार्थ प्रयोक्ता प्रतिपाद्यते तदानुवादो भवति" [109]।।

अर्थात् किसी और प्रमाण से विदित बात को ही, दूसरे कार्य के लिए किसी के द्वारा श्रोता से जब कहा जाता है तब अनुवाद होता है। **प्रमाणान्तरावगतस्यार्थस्य शब्देन संकीर्तनमात्रमनुवादः** [110]। अर्थात् अन्य किसी प्रमाण से जानी हुई बात का शब्द के द्वारा कथन ही अनुवाद है। मीमांसा में वाक्य के आशय का दूसरे शब्दों में समर्थन के लिए प्रयुक्त कथन को 'अनुवाद कहा गया है तथा इसके तीन भेद (भूतार्थानुवाद, स्तुत्यर्थानुवाद, गुणानुवाद) माने गए हैं[111]। न्यायसूत्र में वाक्य तीन प्रकार के माने गए हैं- विधि, अर्थवाद, अनुवाद विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात्[112]।। न्यायसूत्र में ही अन्यत्र अनुवाद' को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'विधि तथा विहित का पुनःकथन अनुवाद है'- विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः[113] ।। न्यायदर्शन में आता है-नानुवादपुनरुक्तयोर्विशेषः शब्दाभ्यासोपपन्ने।[114] अर्थात् अनुवाद और पुनरुक्त में भेद नहीं है, क्योंकि दोनों में शब्दों की आवृत्ति होती है। इसके ठीक उलटे न्यायसूत्र के वात्स्यायनभाष्य में कहा गया है कि 'अनुवाद' पुनरुक्ति नहीं है। पुनरुक्ति निरर्थक होती है, किंतु अनुवाद सार्थक या प्रयोजनयुक्त पुनःकथन होता है। बात को स्पष्ट करने के लिए वहाँ 'शीघ्र-शीघ्र' जाओ (शीघ्रतरगमनोपदेशवत् अभ्यासात् न विशेषः) उदाहरण लिया गया है जिसमें शीघ्र-शीघ्र' को पुनरुक्ति न मानकर अनुवाद माना गया है।

अनुवाद के प्रकार

अनुवाद के कई भेद या प्रकार हो सकते हैं। इन भेदों या प्रकारों के मुख्य आधार चार हैं : (क) गद्यत्व-पद्यत्व; (ख) साहित्यिक विधा; (ग) विषय; (घ) अनुवाद की प्रकृति । इनमें प्रथम तीन

---

[108] बालमनोरमा

[109] महाभाष्यकार कथन टीका

[110] काशिका (२.४.३) में इसी पर टीका

[111] अनुवाद विज्ञान पृ९-१२

[112] न्यायसूत्र २.१.६२

[113] न्यायसूत्र २.१.६५

[114] न्यायसूत्र २.१.६६

अपेक्षाकृत बाह्याधार हैं तथा अंतिम आंतरिक; और इसीलिए यही अधिक सार्थक है। इन आधारों पर मुख्य भेद नीचे दिए जा रहे हैं।

(क) **अनुवाद के गद्य-पद्य होने के आधार पर-**

(१) **गद्यानुवाद-**जैसा कि नाम से स्पष्ट है, यह अनुवाद गद्य में होता है। प्रायः मूल गद्य का ही गद्य में अनुवाद किया जाता है, किंतु यह कोई आवश्यक नहीं है। मूल पद्य का भी गद्य में अनुवाद किया जा सकता है और ऐसे अनुवाद किए भी गए हैं।

(२) **पद्यानुवाद-**यह अनुवाद पद्य में होता है। प्रायः मूल पद्य का ही पद्य में अनुवाद किया जाता है, किंतु मूल गद्य का भी पद्य में अनुवाद हो सकता है और ऐसे अनेक अनुवाद विभिन्न भाषाओं में हुए हैं। इसे छंदानुवाद या छंदबद्ध अनुवाद भी कहते हैं।

(ख) **साहित्यिक विधा के आधार पर**

इस आधार पर ऐसे तो कई भेद हो सकते हैं, किंतु मुख्य भेद इस प्रकार हैं

(१) **काव्यानुवाद-**किसी काव्य-रचना का अनुवाद गद्य, पद्य या मुक्त छंद किसी में भी हो सकता है। यों प्रायः काव्य का अनुवाद पद्य या मुक्त छंद में ही किया जाता है[115] । यह प्रश्न विवाद का रहा है कि काव्य का अनुवाद हो भी सकता है या नहीं ? स्पष्ट ही, काव्यानुवाद होते रहे हैं, अतः अवश्य हो सकते हैं । हाँ, यह अवश्य है कि शैली और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से मूल का अनुगामी सफल अनुवाद करना बहुत कठिन है। कभी-कभी तो यह इतना कठिन होता है कि असंभव की सीमा छू लेता है।

(२) **नाटकानुवाद**-किसी नाटक का नाटक-रूप में अनुवाद । यों अन्य साहित्यिक विधाओं के भी नाटक-रूप में अनुवाद (रूपांतरण) हो सकते है । नाटक के भी काव्य या कहानी-रूप में अनुवाद (रूपांतरण) होते हैं। नाटक का नाटक-रूप में अनवाट कठिन होता है, क्योंकि उसे पठनीय होने के साथ-साथ ऐसा होना चाहिए कि रंगमंच पर भी जा सके। इसीलिए रंगमंच की सारी आवश्यकताओं तथा विशेषताओं का जानकार हो । नाटकानुवाद कर सकता है।

(३) **कथानुवाद-** कथा-साहित्य में उपन्यास तथा कहानी का अनुवाद है । इस श्रेणी का अनुवाद काव्यानुवाद तथा नाटकानुवाद की तुलना है । इस आधार पर रेखाचित्रानुवाद, निबंधानुवाद, संस्मरणानुवाद आदि अन्य भी कई भेद-विभेद होता है।

(ग) **विषय के आधार पर-**

[115] अनुवाद सिद्धान्त एवं व्यवहार पृ १-४

विषय के आधार पर अनुवाद के अनेक भेद किए जा सकते हैं। जैसे सरकारी रिकार्डों का अनुवाद, गजेटियरों का अनुवाद, पत्रकारिता से संबद्ध अनुवाद, विधि-साहित्य का अनुवाद, वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद, गणित-साहित्य का अनुवाद, ऐतिहासिक साहित्य (अभिलेखादि) का अनुवाद, धार्मिक साहित्य (बाइबिल आदि) का अनुवाद तथा ललित साहित्य का अनुवाद आदि।

(घ) अनुवाद की प्रकृति के आधार पर- अनुवाद की प्रकृति के आधार पर भी अनुवाद के कई भेद किए जा सकते हैं। मूलतः इस प्रकार के दो भेद होते हैं

(क) मूलनिष्ठ अनुवाद-ऐसा अनुवाद जो यथासाध्य मूल का अनुगमन करे। मूल के अनुगमन में अनुवादक का ध्यान विचार तथा अभिव्यक्ति दोनों ही पर होता है। वह अपने अनुवाद यथासंभव दोनों ही दृष्टियों से मूल के निकट रखना चाहता है।

(ख) मूलमुक्त अनुवाद- सामान्यतः जो अनुवाद किए जाते हैं, उनमें प्रायः उपर्युक्त दो में से ही किसी एक का या मिश्रित रूप से सुविधानुसार दोनों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणों-उपमानों आदि का देशीकरण भी किया जा सकता है। मूलमुक्त अनुवाद को मूलाधारित या मूलाधृत अनुवाद कहना शायद अधिक अच्छा होगा।

ग.शब्दानुवाद-यह शब्द 'शब्द+अनुवाद' से बना है। मोटे रूप में इस प्रकार के अनुवाद में मूल के हर शब्द पर अनुवादक का ध्यान जाता है। शब्दानुवाद का प्रयोग एक से अधिक प्रकार के अनुवादों के लिए होता रहा है। इसलिए इसके कई उपभेद किए जा सकते हैं। अँग्रेजी में लिटरल ट्रांस्लेशन, वर्बल ट्रांस्लेशन, वर्ड-फ़ॉर-वर्ड ट्रांस्लेशन आदि इसी को कहते हैं[116]।

3.3. अनुवाद की शैलियाँ

अनुवाद के प्रसंग में 'शैली' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में प्रायः होता है। एक तो अनुवाद की विविध शैलियों से लोग अर्थ लेते हैं शब्दानुवाद, भावानुवाद, सारानुवाद आदि का। इस अर्थ में 'शैली अनुवाद के प्रकार या भेद का पर्याय है। पीछे 'अनुवाद के प्रकार' शीर्षक के अंतर्गत इन पर विचार किया जा चुका है। 'शैली' का अनुवाद के प्रसंग में दूसरा अर्थ लिया जाता है-अनुवाद में अभिव्यक्ति की शैली । यहाँ इस दूसरे अर्थ में ही शैली पर विचार किया जा रहा है[117]।

मूल प्रश्न यह है कि अनुवाद की शैली क्या हो? अनुवादक का मूल उद्देश्य होता है-मूल कृति को लक्ष्य भाषा में निकटतम रूप में भाषांतरित करना। उदाहरण के लिए, जयशंकर प्रसाद

---

[116] भषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र

[117] अनुवादविज्ञान पृ २८-३२

का अनुवाद, प्रेमचंद का अनुवाद तथा महात्मा गाँधी का अनुवाद, चाहे किसी भी भाषा में क्यों न किया जाए, एक शैली में नहीं किया जाना चाहिए।[118]

अनुवाद और भाषाविज्ञान

अनुवाद में एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में व्यक्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, अनुवाद भाषा का रूपांतरण है। इसी कारण उसका सीधा संबंध भाषा के विज्ञान अर्थातू भाषाविज्ञान से है। इस बात को अच्छी तरह से समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि 'भाषा' है क्या?

भाषाया यत्तु विज्ञानं, सर्वाङ्ग व्याकृतात्मकम्।

विज्ञानदृष्टिमूलं तद् भाषाविज्ञानमुच्यते॥[119]

भाषा को अनेक रूपों में परिभाषित किया जाता है। बहुत गहराई में न जाकर इस प्रसंग । में इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि "भाषा ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसकी सहायता से मानव अपने विचार दूसरों पर व्यक्त करता है। कहने का आशय यह है कि भाषा में प्रयुक्त शुब्द वस्तुओं, भावों, विचारों आदि के प्रतीक होते हैं। उदाहरण के लिए, पुस्तक, मेज़, घोड़ा, चींटी, अच्छाई, बुराई, भागना, लिखना, पूजना आदि शब्दों को लें। ये शब्द विभिन्न चीज़ों, भावों या क्रियाओं आदि के ध्वनि-प्रतीक हैं। इसी कारण इनको सुनते ही उन चीज़ों, जीवों, भावों या क्रियाओं आदि का बोध हो जाता है। भाषा इन्हीं ध्वनि-प्रतीकों (भाषिक प्रतीकों या शब्दों) की व्यवस्था है[120]।

यह भाषा वस्तुतः मानवशरीर में दैवी अंश है जो इस सृष्टि में केवल मनुष्य मात्र को ही प्राप्त है।यह दिव्य ज्योति ही समस्त संसार में अपना प्रकाश फैलाए हुए है।इस भाषारुपी ज्योति के बिना संसार घोर अन्धकारमय होता[121]।

इदमन्धन्तमःकृत्स्नं जायते भूवनत्रयम्।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥[122]

ध्वनि-प्रतीकों या शब्दों के अतिरिक्त हर भाषा की कारक, लिंग, वचन, काल, पुरुष आदि को व्यक्त करने की अपनी विशेष व्यवस्था भी होती है। उदाहरण के लिए, संस्कृत में तीन लिंग हैं

---

[118] अनुवाद विज्ञान पृ३०

[119] भाषाविज्ञान पृ ६

[120] भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र

[121] भाषाविज्ञान पृ १

[122] काव्यादर्श पृ १-४

तो ओडिआ में चार हैं, या अँग्रेज़ी में क्रिया कर्ता के लिंग के अनुसार नहीं बदलती (**Ram goes. Sita goes**) तो ओडि में क्रिया लिंग के अनुसार बदलती है (राम जाता है, सीता जाती है), या हिंदी में 'घोड़ा' शब्द के घोड़ा, घोड़े (एक वचन जैसे घोड़े को, बहुवचन जैसे घोड़े दौड़ रहे हैं), घोड़ों, घोड़ो (जैसे ऐ घोड़ो) चार रूप होते हैं, तो अँग्रेज़ी में **Horse** के केवल । दो **Horse, Horses** इत्यादि[123]।

अनुवाद और ध्वनिविज्ञान

ध्वनेर्विश्लेषणं शिक्षा वर्णनं च विभाजनम।

परिवृत्त्यादीतीहासश्च ध्वनिविज्ञानमुच्यते॥[124]

ध्वनिविज्ञान भाषाशास्त्र का महत्वपूर्ण अंग है। इसके लिए अंग्रेजी में फोनोलाँजी और फोनेटिक्स दो शब्द प्रचलित हैं।अनुवादक जिस सामग्री का अनुवाद करता है उसमें दो प्रकार के शब्द हो सकते हैंवे जिनका अनुवाद किया जाता है, और दूसरे वे जिनका अनुवाद नहीं किया जाता, और लि थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ प्रायः मूल रूप में ही स्रोत भाषा से उठाकर लक्ष्य भाषा में रख देते हैं। इस दूसरे प्रकार के शब्दों को स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में लाने में अनुवादक ध्वनिविज्ञान का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे शब्द प्रायः व्यक्तिवाचक संज्ञा या पारिभाषिक आ होते हैं।[125] वस्तुतः जब अनुवादक के सामने इस प्रकार की समस्या आए तो उसे स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की ध्वनियों की तुलना करनी चाहिए। तुलना करने पर ध्वनियों के मोटे रूप से चार वर्ग बन सकते हैं।[126]

भिन्न ध्वनियाँ

इस वर्ग में ऐसी ध्वनियां आती हैं जो मूलतः उच्चारण तथा श्रवण के स्तर पर भिन्न होती हैं। अरबी 'स्वाद' अक्षर का 'स' तथा 'से' अक्षर का 'स्', ये दोनों हिंदी 'स्' से भिन्न हैं। इसी प्रकार अरवी जोय, ज्वाद तथा जाल के ज्' हिंदी के 'ज्' से भिन्न हैं। भिन्नता के बावजूद भी ये धनियाँ कुछ मिलती-जुलती लगती हैं। अनुवादक इसी कारण भिन्नता का विचार न करके इन्हीं का प्रयोग करता है। अरबी सावुन में 'स्वाद' है तथा सावित में 'से, किंतु हिंदी में इन दोनों ही शब्दों को सामान्य 'स' से लिखते हैं। इस प्रकार अरबी जालिम (जोय), जरुरी (ज्वाद) जात (जाल) तीनों ही हिंदी में सामान्य ज़' से लिख जाते हैं। यह उल्लेख्य है कि

---

[123] हिन्दि अनुवाद साहित्य पृ ४

[124] सांख्यसूत्र

[125] अनुवादविज्ञान पृ ४०

[126] भाषाविज्ञान पृ १०७

'स्वाद' का 'स्' कंठस्थानयुक्तदंत-वर्त्स्य अघोष संधर्षी , “से” का स “थ्” से मिलता जुलता, “जोय” का “ज्” कंठस्थानयुक्त दंत-वर्त्स्य घोष संघर्षी आदि हैं।

ध्वनिविज्ञान का वर्ण पटलः-

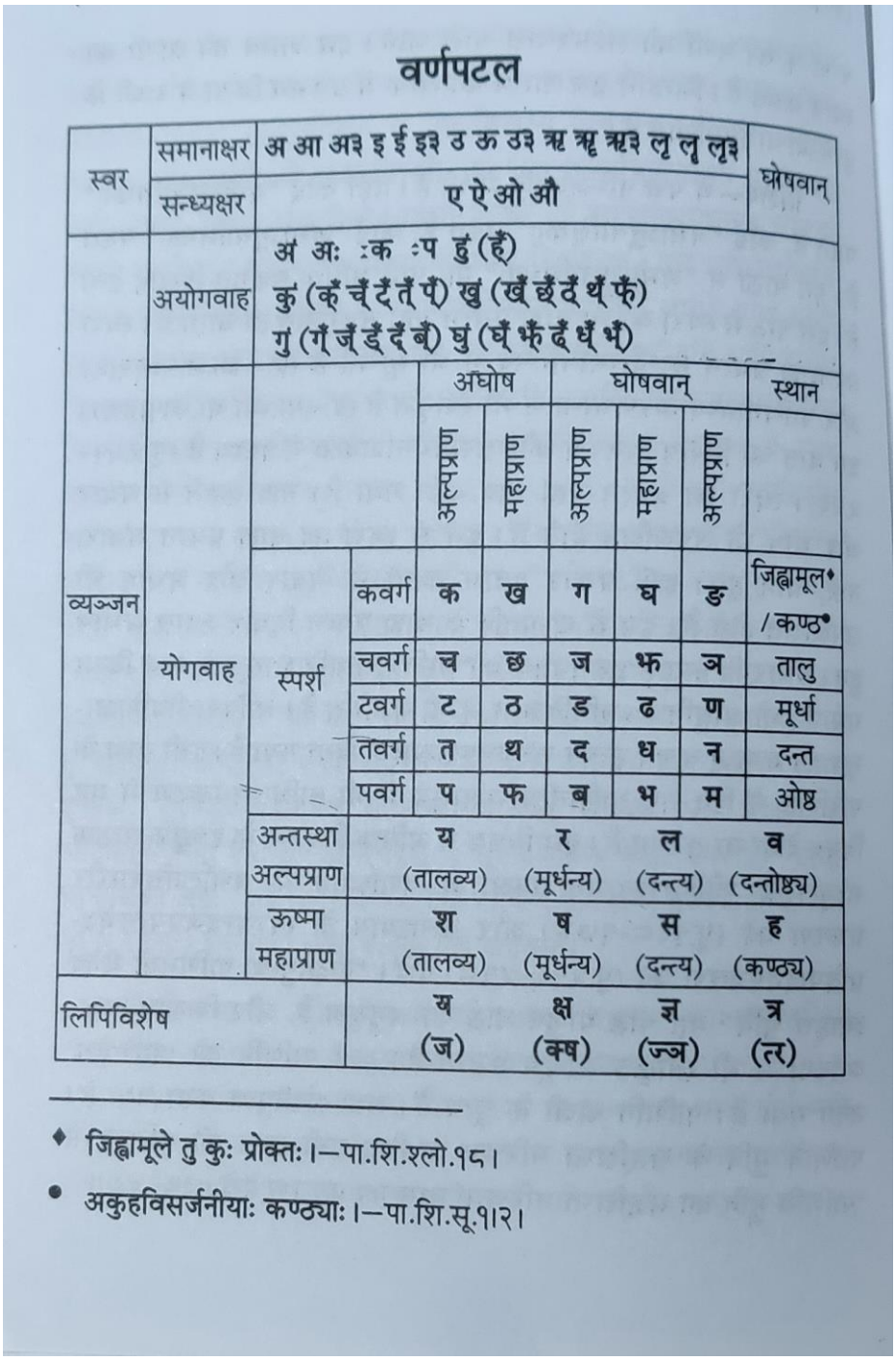

वर्णपटल

स्वर	समानाक्षर	अ आ अ३ इ ई इ३ उ ऊ उ३ ऋ ॠ ऋ३ ऌ ॡ ऌ३						घोषवान्
	सन्ध्यक्षर	ए ऐ ओ औ						
व्यञ्जन	अयोगवाह	अं अः ःक ःप हुं (हँ) कु (कँ चँ टँ तँ पँ) खु (खँ छँ ठँ थँ फँ) गु (गँ जँ डँ दँ बँ) घु (घँ झँ ढँ धँ भँ)						
	योगवाह			अघोष		घोषवान्			स्थान
				अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	
		स्पर्श	कवर्ग	क	ख	ग	घ	ङ	जिह्वामूल♦ / कण्ठ•
			चवर्ग	च	छ	ज	झ	ञ	तालु
			टवर्ग	ट	ठ	ड	ढ	ण	मूर्धा
			तवर्ग	त	थ	द	ध	न	दन्त
			पवर्ग	प	फ	ब	भ	म	ओष्ठ
		अन्तस्था अल्पप्राण		य (तालव्य)		र (मूर्धन्य)		ल (दन्त्य)	व (दन्तोष्ठ्य)
		ऊष्मा महाप्राण		श (तालव्य)		ष (मूर्धन्य)		स (दन्त्य)	ह (कण्ठ्य)
लिपिविशेष				य (ज)		क्ष (कष)		ज्ञ (ज्ञ)	त्र (त्र)

♦ जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तः।—पा.शि.श्लो.१८।

• अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः।—पा.शि.सू.१।२।

वैदिक-ध्वनियाँ

वैदिक संस्कृत में ५२ ध्वनियाँ प्राप्त हिती है-

मूलस्वर→	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ए	ओ	= ११
संयुक्त स्वर →		ऐ (अइ)		औ (अउ)								= २
स्पर्श→	क्	ख्		ग्		घ्		ङ् (कण्ठ्य्)				
	च्	छ्		ज्		झ्		ञ् (तालव्य)				
	ट्	ठ्		ड् (ळ्)		ढ् (ळ्ह)		ण् (मूर्धन्य)				
	त्	थ्		द्		ध्		न् (दन्त्य)				
	प्	फ्		ब्		भ्		म् (ओष्ट्य)				=२७
	य्	र्		ल्		व्		अन्तस्थ				=४
	श्	ष्		स्				अघोष संघर्षी				= ३
	ह्							घोषवर्ण्				= १
	विसर्गः	जिह्वामूलीय		उपध्मानीय				अघोष उष्म				= ३
	अनुस्वार							शुद्ध अनुनासिक				= १
												५२

3.4. अनुवाद: समस्याएँ और समाधान-

अनुवाद आज व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकता बन गया है। आज का ज्ञान-विज्ञान - साहित्य केवल एक भाषा-समाज की वस्तु नहीं रहा है बल्कि पूरे मानव समाज की धरोहर बन गया है। इस धरोहर को सब तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व अनुवाद के ऊपर आ पड़ा है। पहले अनुवाद की उपयोगिता ललित साहित्य और धार्मिक ग्रंथों तक सीमित थी किंतु आज के युग में विज्ञान और टेक्नोलोजी के क्षेत्र में जो प्रगति हो रही है वह जनमानस को चौंका देने वाली है। इन उपलब्धियों को विश्व के अन्य भागों में संप्रेषित करने के लिए अनुवाद की उपयोगिता और महत्ता बढ़ गई है। आज छोटे-बड़े राष्ट्र और छोटी-बड़ी जातियाँ भी परस्पर संबंध स्थापित करना चाहती हैं और सामान्य व्यक्ति संसार के विभिन्न भागों में फैले विभिन्न भाषा समाजों से संपर्क करना चाहता है, उन्हें समझना चाहता है और उनके निकट आना चाहता है। इस दृष्टि से अनुवाद की भूमिका बहुमुखी, बहुआयामी और बहुप्रयोजनीय हो गई है।[127] अनुवाद के संबंध में यह आम धारणा है कि कोई भी व्यक्ति जो मूलभाषा और लक्ष्यभाषा को जानता है, अनुवाद कर सकता है। इस दृष्टि से ऐसा लगता है।कि अनुवाद के बारे में सैद्धांतिक चर्चा करना निरर्थक और असंगत है। वास्तव में स्थिति इससे भिन्न है। दो

[127] अनुवादविज्ञान प्रविधि तथा समस्याएं पृ ६७

भाषाओं की विशेषता और विषय का ज्ञान निश्चय ही अनुवाद में उपयोगी और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं किंतु मात्र इनके सहारे अनुवाद की वैतरणी, विशेषकर सर्जनात्मक अनुवाद की वैतरणी पार करना संभव नहीं है। मूलकृति में ऐसे कई भाषिक रूप और सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष आते हैं जिनका अनुवाद नहीं हो पाता। इन समस्याओं को देखते हुए विद्वानों ने अनुवाद के बारे में गंभीर और विस्तृत विवेचन किया है।[128]

अनुवाद की मुख्यतः दो प्रकार की समस्याएँ हैं- एक, भाषापरक और दूसरी, जिक-सांस्कृतिक।

1. भाषापरक सीमाएँ, **2.** सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएँ और **3.** पाठ-प्रकृतिपरक सीमाएँ।

1. भाषापरक सीमाएँ-

प्रत्येक भाषा की अपनी संरचना होती है। इसीलिए स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा के भाषिक रूपों में समान अर्थ मिलने की स्थिति बहुत कम होती है, किंतु यह बात अवश्य है। कि वे एक ही स्थिति में कार्य करते हैं। ओडिआ भाषा में व्यवहार शब्दसमूह चार भाग में विभक्त है।१.तत्सम २.तद्भव ३.देशज ४.विदेशी इस प्रकार का है। तत्समउदाहरण है - संस्कृत व्यवहार करने बाला समान अर्थ हि तत्सम् है ।

तत्सम का अर्थ है संस्कृत सह समान। केतेक शब्द- अनल, अनुभव, अभिनय, आक्रोश,सूर्य,पक्षी, प्रभात, सुख, दुःख, निद्रा, इसप्रकार शब्द है साधु शब्द कहते है।

तद्भव-ऐसे शब्द जो संस्कृत और प्राकृत से विकृत होकर हिन्दी में आए है।तद्भव शब्द कहलाते हैं।

देशज- ऐसे शब्द जिनकी मूल उत्पति का ज्ञान नहीं होता है उन्हें शब्द देशज कहते हैं। कुछ शब्द-अझट, अखाडुआ, अडा कुटा, अलिआ इस प्रकार है।

वेदेशी-ऐसे शब्द जो विदेशी भाषाओं से ज्यों के त्यों या परिवर्तित रुप में हिन्दी प्रयोग में लाए जाते है।[129]

२.सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएँ-

सम सांस्कृतिक भाषाओं में भारत की ओडिआ, हिंदी, बंगला, तमिल, तेलुगु, मलयालम, मराठी आदि भाषाएँ आती हैं। इनके परस्पर अनुवाद में जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं वे कुछ ही अभिव्यक्तियों में ही मिलती हैं।

---

[128] अनुवादविज्ञान पृ ९१

[129] ओडिआव्याकरण पृ २४

संस्कृति के संदर्भ में देश-प्रदेश की वेशभूषा का भी विशेष स्थान होता है। इससे भी अनुवाद में काफी कठिनाई होती है। ओडिआ भाषी क्षेत्र में साढी,धोती,लुंगी,सार्ट, आदि वस्त्रों का संदर्भपरक अर्थ है।

उपसंहार

संस्कृत साहित्य जगत का विद्वान रूपे पाणिनी विश्व में सुपरिचित हैं। इहनोंने समग्र संसार को जो अमूल्य निधि प्रदान किया कोई भी अभि तक भूल नहीं सकते हैं। इनका जन्म आर्यों की सुप्रसिद्धि सप्तसिन्धुओं में से एक सिन्धु काबुल के संगम के निकटवर्ती शालातुर ग्राम में हुआ था। आजकाल इस जागा लाहोर नाम से परिचित है। जो भारत का पडोशी देश पाकिस्तान में हैं।इस जागा मुनियों तथा कवियों का पवित्र स्थान है। पाणिनी को कभिकभि शालातुरीय कहा जाता है। पाणिनी बडे ही अध्यवसायी तथा परिश्रमशील थे। देश भ्रमण करके शव्दों के परिवर्तनों का पता लगाया है। समग्र मानव कल्याण निमन्ते समाज,जाति,ग्राम तथा देश में प्रयोग किये जाने वाले शद्व का ज्ञान कराने में वहुत वडा योगदान है। प्रकृत लघु शोध प्रवंध तीन अध्यायों में विभक्त है। इसका प्रथमोध्याय वेदाङ्गो का परिचय,शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, वैदिक कालिन शिक्षाग्रन्थ एवं विशेष उल्लेखनीय शिक्षाग्रन्थ रुपे पाणिनीयशिक्षा अन्तर्गत है। पाणिनीयशिक्षा का भारतीय भाषा में अनुवाद एवं पूर्ववर्ती शोधकार्य का वर्णन किया है।

शोध विषय के क्षेत्र एवं उद्देश्य तथा शोधप्रविधि आदि विचार किया गया है।द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत पाणिनीयशिक्षा को ओडिआ भाषा में अनुवाद किया गया है। इस अध्याय के अन्तर्गत षाठश्लोक है।श्लोक का अन्वय एवं श्लोक का ओडिआ भाषा में अनुवाद किया गया है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत अनुवाद क्य? है।अनुवाद शब्द व्युत्पत्ति,अर्थ और इतिहास पर चर्चा किया गया है। साथ ही अनुवाद और भाषाविज्ञान का विचार किया गया है।भाषाविज्ञान अन्तर्गत वाक्यविज्ञान, अर्थविज्ञान, पदविज्ञान, ध्वनिविज्ञान है।ध्वनिविज्ञान को विस्तृतरुपे आलोचना किया गया है। साथ ही अनुवाद की प्रक्रिया,अनुवाद की समस्या समाधान एवं अनुवाद पुनरीक्षण और मूल्यांकन विचार किया गया है।इसप्रकार पाणिनीयशिक्षा का अध्ययन करने के उपरान्त शोधार्थी के द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकता है-

स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा। (ऋग्वेदभाष्य)

- शिक्षा का अर्थ है- वर्णोच्चारण की शिक्षा देना। सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में शिक्षा का अर्थ है- जिसमें स्वर,वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है उसे शिक्षा कहते है। वेदों के स्वर, वर्ण आदि के शुद्ध उच्चारण करने की शिक्षा जिससे मिलती है, वह शिक्षा है। वेदों के मन्त्रों का पठन पाठन तथा उच्चारण ठीक रीति से करने की सूचना इस शिक्षा से प्राप्त होती है।
- वर्णोच्चारण की शिक्षादेना,वर्ण का किस स्थान से उच्चारण करना, क्या प्रयत्न करना, उनका विभाजन किस रुप में होना, कितने स्थान और क्या प्रयत्न हैं। शरीर-वायु किस प्रकार वर्ण के रुप में परिवर्तीत होती है। कितने स्वर है। किस स्वर का किस प्रकार उच्चारण किया जाता है।
- व्याकरण शास्त्र का अध्ययन आवश्यक, व्याकरण का महत्वप्राच्चिन काल से आजतक प्रतिष्ठित है।विश्व में भिन्नभिन्न भाषा का व्याकरण ग्रन्थ रचित है।किन्तु पाणिनीकृत संस्कृत व्याकरण विश्व का सर्वप्राच्चिन व्याकरण ग्रन्थ रुपे परिचित है।व्याकरण भाषाविश्लेषक प्राचिनग्रन्थ है।इसका उद्देश्य शुद्धवोलना,लेखना,पढना एवं व्याकरणशास्त्र अध्ययन करना जरूरी है।समस्तशास्त्र का मूलआधार व्याकरण है। वोलने से यादा लिखना में शुद्ध प्रयोग करना चाहिए, अशुद्ध लिखागया पुस्तक पढने से अशुद्ध का प्रयोग हो सकता है। क्रमशःएक भाषा का लुप्त हो सकता सम्भावना है।व्याकरण शुद्ध भाषा प्रयोग करने का मर्ग देखाने वाला शास्त्र है।

समस्या-

लिपिगत समस्या भारत में अनेक प्रकार भाषा दिखाइ देता है और वहु आञ्चलिक भाषा बी वोलते हुए प्रचलन होता है। हरभाषा का लिपि अलग प्रकार का है।संस्कृत देवनागरी लिपि

का प्रयोग करता है, इस लिप बाएं से दाएं लिखते है। सभी अक्षर के ऊपर रेखा है, इस रेखा को शिरोरेखा कहते है।ओडिआ लिपि ओडिआ भाषा लिखने के लिए प्रयोग करता है। इसका स्क्रिप्ट पुरातन किलगं स्क्रिप्ट से बना है।ओडिआ भाषा की लिपि का आकार गोलाकार है।

व्याकरणगत समस्या संस्कृत व्याकरण में लिङ्ग, वचन, पूरूष, कारक, विभक्ति, अव्यय, उपसर्ग आदि होता है।ओडिआ भाषा में सव कुछ है ,इसिको अलग अलग प्रकार मानते है। ओडिआ भाषा का अनुसार लिङ्ग चारप्रकार मानते है।वचन को दो प्रकार मानते है।

- **उच्चारणगत समस्या** दैनिक जीवन में संस्कृत व्याकरण के केतक शद्व है यो कि ओडिआ भाषा में उच्चारण करना कठिन होता है और समझना कठिन होता है। भाषा का उचारण अनुसार ज्ञात हो जाता है कि किस प्रकार भाषा बोलता है। केतेक संस्कृत शब्द उच्चारण करने साधारण लोग के लिए कठिन होता है।
- **ध्वनिगतसमस्या** ध्वनिविज्ञान भाषाशास्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग है।यह शब्द संस्कृत भण् धातु का ही परिवर्तन रुप है। ध्वनि समस्या में मुख्य रुप से ध्वनि-शिक्षा, ध्वनि की परिभाषा, भाषा की विविध ध्वनियाँ, वग्यंन्त्र, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनि उत्पत्ति, श्रवण और ग्रहण आदि का विचार किया गया है।
- **वर्णगतसमस्या** संस्कृत भाषा में ५२ वर्ण संख्या मानते है। १६ स्वरवर्ण एवं३६ व्यञ्जन वर्ण है। ओडिआभाषा में४९ वर्ण संख्या मानते है। ११ स्वर वर्ण और ३८ व्यञ्जन वर्ण है।
- **अर्थ-सम्बन्धी समस्या** अर्थ काल, स्थान और प्रसंग के अनुसार बदलते रहते हैं। किसी अर्थ का संकोच होता है, तो किसी का विस्तार तो किसी का व्यतिरेक अर्थ का भी अपना इतिहास होता है। एक शब्द के विपरीत अर्थ भी मिलते हैं। इसप्रकार वहुत सारे समस्यांए हैं।

समाधान

संस्कृत में छः वेदाङ्ग में शिक्षा एक प्रकार अङ्ग है। शिक्षाग्रन्थों में प्रातिशाख्य ग्रन्थों और व्याकरण आदि ध्वनि शिक्षा पर गहन, मनन, चिन्तन और वर्णन प्राप्त होता है।पाणिनीयशिक्षा के अध्ययन और अध्यापन करते समय में यह अनुभव करता रहा हुँ कि ओडिआ भाषा में शिक्षाग्रन्थों का अभाव है।पाणिनीयशिक्षा को अनुवाद करने के लिए हिन्दि, अंग्रेजी वाला पुस्तक का आश्रय लेना पडता है।इसशिक्षा वहु प्रतिष्टित होने पर भी प्रामाणिक एवं सर्वविषयावगाही ध्वनित्तत्व ज्ञान प्राप्ति पुस्तकों का ओडिआ अनुवाद अभाव है।इस अभाव की पूर्त्ती के लिए लघुशोध प्रवन्ध प्रयत्न किया गया है। आशा है पाणिनीयशिक्षा ग्रन्थ के प्रेमीछात्रो, विद्वानों एवं अध्येताओं, आचार्य का मनसन्तोष होगा। कहा जाता है कि व्याकरण को व्याधिकरण "व्याकरणम् व्याधिकरणम्" मैंने प्रयत्न किया है कि इस कठिन विषय को सरल, सहज, सुबोध और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।मुझे पूर्णविश्वास है कि कोई भी ओडिआ अध्येता एकवार इस लघुशोध प्रवन्ध को आद्योपान्त पढने पर परवर्ती समय में शोधार्थि को सहायक होगा।

इस शोधप्रवन्ध में प्रयत्न किया गया है –शिक्षा का परिचय, वेदाङ्ग विचार, ध्वनि विज्ञान, अनुवाद शब्द, अर्थ,व्युत्पति,परम्परा, समस्या समाधान पाणिनीयशिक्षा, विषय आलोचना किया है। इस में मेरा उद्देश्य है-सरलता, संक्षेप और प्रामाणिकता,ओडिआ प्रदेश भाषभाषी लोक को अनेक सहायक होगा।

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठपुत्र व्याकरणम्। स्वजनःश्वजन मा भूत् सकलं शकलं सकृत शकृत॥

Appendix i

अनुवाद में उपयोग किये जाने वाले महत्त्वपूर्ण ओडिआ-संस्कृत समानार्थी शब्दकोश

ଓଡିଆ		संस्कृत
		शिरिस्थिखण्डः
ଅଂଶ	-	विभाजन, विभाजनम्
ଅଙ୍ଗ	-	अवयव
ଅଧିକ	-	अधिकम्, पर्याप्तम्
ଅନୁଗମନ	-	अनुगमनम्
ଅନ୍ଧକାର	-	अन्धकारः
ଅଭ୍ୟାସ	-	अभ्यास, प्रयत्न
ଅର୍ଥଜ୍ଞାନ	-	अर्थज्ञानम्
ଅର୍ଧ	-	अर्धम्
ଅଳ୍ପନାଦ	-	अल्पनादः
ଅକ୍ଷର	-	अक्षरः
ଆଖି	-	चक्षुः,नेत्रम्
ଉରୁ	-	उरुः
ଋଷି	-	महर्षी
ଏବେଠାରୁ	-	इतःप्रभृतिः
ଓଠ	-	ओष्ठ, अधरः
କଠୋର	-	कठिनम्

କଠୋର	-	कठिनम्
କଣ୍ଠ ସ୍ୱରଯନ୍ତ୍ରମ୍	-	ग्रीवाभाग,
କଣ୍ଠ ସ୍ୱରଯନ୍ତ୍ରମ୍	-	ग्रीवाभाग,
କପାଳ	-	ललाटम्,
କର	-	करः
କଷ୍ଟ	-	कष्टम्
କାଂସ୍ୟବାଦ୍ୟ	-	कांस्यवाद्यम्
କାନ	-	कर्णः
କାମୁଡିବା	-	दंशनम्
କୁଆ	-	काकः,वायसः
କୋଇଲି	-	कोकिलः,पिकः
ଖେଳିବା	-	क्रिडनम्
ଗମନ	-	गमनम्
ଗାଇବା	-	गानम्
ଗାଧୋଇବା	-	स्नानम्
ଗୁରୁ	-	गुरुः
ଚେଷ୍ଟା	-	प्रयास
ଛାତି	-	वक्षः

ଛୋଟ - लघु,अल्पम,क्षुद्रम्

ଛୋଟଛୋଟ - क्षुद्रादिक्षुद्रम्

ଜିହ୍ୱାମୂଳ - जिह्वामूल्यम्

ଜୀବାତ୍ମା - जीवात्मा

ଝିଅ - कन्या

ତର୍ଜନୀ - अङ्गुस्टस्याङ्गुली

ଦଗ୍ଧରଜ୍ଜୁ - भस्मीकृतरज्जु

ଦାନ୍ତ - दन्तः

ଦିଗ - दिक्

ଦୀର୍ଘ - दीर्घम्

ଦୁଇ - द्वे

ଦୋଷ - दुष्टम्

ଧରିବା - धारयति

ନଅ - नव

ନମସ୍କାର - नमस्कारम्

ନୟନ - चक्षु

ନାଆଁ - नावः

ନାକ - नासिका

ନିଜେ - स्वयम्

ନେଉଳ - नकुल

ପଟୁତା - चतुरता

ପଡିବା - पतति

ପଣ୍ଡିତ - पण्डितः,विद्वान

ପବନ - वायुः,समीरः

ପରମ୍ପରା - परम्पराम्

ପରସ୍ପର - परस्परम्

ପାଇବା - प्राप्त

ପାଠକ-पाठकः

ପାଦ-चरणम्

ପିଡିତ-पिडितः

ପୂର୍ବଶାସ୍ତ्र-प्राक् शास्त्र

ପ୍ରକାଶ-आतपे,विकाश,हीरक

ବଜ୍ର- वज्रं,वज्रायोद्धम

ବାଘ- व्याघ्र,तरक्षुः

ବିନାଶ-विनाशः

ବିବୃତ-विवृतः

ବିରାମ-अवसरः

ବିଳମ୍ବ-मन्थरः

ବେଦ-ज्ञाने

ବେଦଅଧ୍ୟୟନକାରୀ-वेदज्ञः

ବ୍ୟାକରଣ-व्याकरणम्

ଭିତରଚେଷ୍ଟା-आभान्तरप्रयत्न

ମଧୁର-मधुः

ମଧ୍ୟଭାଗ-मध्यदेश

ମନ-मनम् ,चेतस्

ମନୁଷ୍ୟ-मानवः

ମନ୍ତ୍ର-मन्त्रम्

ମୟୂର-नीलकण्ठ

ମୁଁ-अहम

ମୂର୍ଧା-शिरः

ଲୌକିକବାଣୀ-लौकिक गिरः

ଶଙ୍କର-शिवः

ଶିର-शिर

ଶିଷ୍ୟ-शिष्यः

ଶିକ୍ଷା-वेदाङ्ग

ଶୁଣିବା-श्रवण

ଶ୍ରୁତି-वेदः

ଶ୍ୱାସ-निःश्वास

ସନ୍ଦେହ-संसय

ସାତଗୋଟିସ୍ୱର-सप्तस्वर

ସାପ-सर्पः

ସୁଖ-सुखम्

ସୁନ୍ଦର-सौन्दर्यम

ସ୍ମୃତି-मार्गः स्मृतिः

ସ୍ୱର-स्वरः

ହଂସ-सूर्यः

ହାତ-हस्तः,विस्तृतकरः

ହୃଦୟ-मनस,हृदयकमनम्

କ୍ଷୁଦ୍ର-न्यूनम्

Appendix ii

ध्वन्यात्मक शब्द Phonetic Terms

अघोष २०

अनुनासिक ३९

अन्तस्था १६

आभ्यान्तर प्रयत्न ३५

उपध्मा १४

उपध्मानिय २२

उरुस्य १६

कण्ठतालव्य १८

कर्ण ४५

घोषा २०

तालु १३

त्रिमात्रा ४९

दन्त १३

दन्तमूल २३

दन्तोष्ठ १८

दीर्घ ११

नासिक्य २७,

प्रयत्न १०,

प्लुत ५

मध्यम ८

मूर्धन्य ९

रङ्गवर्णः २७

रेफ १४

शिक्षा ४२

शिरस १३

स्पर्श ४

स्पृष्ट ३८

ह्रस्व ११

अनुदात्त ११, १२, ४३, ४५, ४८

अनुप्रदान १०, ३८

अनुस्वार ५, २२, २४

अन्तोदात्त ४५, ४६

अर्धमात्रा १९, २८

आद्युदात्त ४५, ४६

उदात्त ११, १२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४८

उष्म १४, १५, २१, २२,

ओष्ठ १७, १८

कण्ट्य १६, १७, १९

कण्ठ १३, १८, ३२, ३६

कम्प ३०, ३२

जिह्वामूल १३, १४, १८

तालव्य १७, १८

त्र्युदात्त ४५, ४७, ४८

द्विमात्रता २८, २९, ४९

नाद ३७, ३९

नासिका २२, २५

नीच्चस्वरीत ४५, ४६

प्रचय ४४, ४८

मात्रा १९, २८, ४९

यमा ४, २२, २७

रङ्ग २६, २८

विवृत १९, २०

संवृत १९, २०

स्थान १३, २२

स्वरित११, १२, ४३, ४४, ४५, ४७, ४८

Appendix iii

मूल ग्रन्थ

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा ।
शास्त्रानुपूर्वं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः ॥१॥
प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः।
पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ॥ २॥
त्रिषष्टिश्चतुःषटिर्वा वर्णा शम्भुमतेमताः ।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥ ३॥
स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥४॥
अनुस्वारो विसर्गश्च □क-पौ चापि पराश्रितौ ।
दुःस्पृष्टो चापि विज्ञेयो ऌकारो प्लुत एव सः ॥ ५॥
आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया ।
मनः कायाग्निमाहन्ति सः प्रेरयति मारुतम् ॥ ६॥
मारुस्तूरसिचरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् ।
प्रातःसवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥ ७॥
कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् ।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगतम् ॥ ८॥
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ।
वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥ ९॥
स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नादनुप्रदानतः ।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत ॥ १०॥
उदातानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः ।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥ ११॥
उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ ।
स्वरित्प्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥ १२॥
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥ १३॥
ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च ।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥ १४॥

यद्द्यौकारप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम् ।
स्वरान्तं तादृशं विद्यादन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥ १५॥
हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्स्थाभिश्च संयुतम् ।
औरस्यं तं विजानीयात्कठ्यमाहुरसंयुतम् ॥ १६॥
कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू ।
स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या ऌतुलसाः स्मृताः ॥ १७॥
जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठो वः स्मृतो बुधैः ।
एऐ तु कण्ठतालव्या ओऔ तु कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ॥ १८॥
अर्धमात्रा तु कण्ठ्या स्यादेकारैकारयोर्भवेत् ।
ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम् ॥ १९॥
संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम् ।
घोषा वा संऋताः सर्वे अघोषा विवृतः स्मृताः ॥ २०॥
स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम् ।
तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचो तथैव च ॥ २१॥
अनुस्वार यमानां च नासिका स्थानमुच्यते ।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ॥ २२॥
अलाबुवीणानिर्घोषो दन्तमूल्यस्वराननु ।
अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यम् होः शषसेषु च ॥ २३॥
अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये ।
द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद्यत्रोकारवकारयोः ॥ २४॥
व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दन्ताभ्यां न तु पीडयेत् ।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥ २५॥
यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्र□ इत्यभिभाषते ।
एवम् रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अरा□ इव खेदया ॥ २६॥
रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्नो ग्रसेत्पूर्वमक्षरम् ।
दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात्पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥ २७॥
हृदये चैकमात्रस्त्वर्धमात्रस्तु मूर्धनि ।
नासिकायां तथार्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता ॥ २८॥
हृदयादुत्करे तिष्ठन्कांस्येन समनुस्वरम् ।
मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वा□ इति निदर्शनम् ॥ २९॥
मध्ये तु कम्पयेत्कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत् ।

सरङ्गं कम्पयेत्कम्पं रथीवेति निदर्शनम् ॥ ३०॥
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः।
सम्यग्वर्णप्रयोगेन ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३१॥
गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥ ३२॥
माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥ ३३॥
शङ्कितं भीतमुत्कृष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ।
काकस्वरं शिरसि गतं तथ स्थानविवर्जितम् ॥ ३४॥
उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम् ।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न न दीनं न तु सानुनास्यम् ॥ ३५॥
प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन।
मध्यंदिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन ॥ ३६॥
तारं तु विद्यात्सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् ।
मयूरहंसान्यमृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन ॥ ३७॥
अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नमस्पृष्टा शलः स्मृताः ।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्तानिबोचानुप्रदानतः ॥ ३८॥
अमोञमोनुनासिका नह्नो नादिनो हझषः स्मृताः ।
ईषन्नादा यणो जश्च श्वासिनस्तु खफादयः ॥ ३९॥
ईषत्छवासांश्चरो विद्याद्वोर्धामैतत्प्रचक्षते ।
दाक्षीपुत्रः पाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवः ॥ ४०॥
छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तः कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४२॥
उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा।
उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव ।४३॥
उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात्प्रचयो मध्यतोङ्गुलीम् ।
निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ॥ ४४॥
अन्तोदात्तमाद्युदत्तमुदात्तमनुदातं नीचस्वरितम्।
मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नवपदशय्या ॥ ४५॥
अग्निः बोमः प्रवो वीर्यं हविषं स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती।

अग्निरित्यन्तोदात्तं सोम इत्याद्युदत्तं प्रेत्युदात्तं दीर्घं नीचस्वरितम् ॥ ४६॥
हविषां मध्योदात्तंस्वरिति स्वरितं बृहस्पतिरिति ।
द्व्युदात्तमिन्द्राबृहस्पती इति त्रुदात्तम् ॥ ४७॥
अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः।
स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥ ४८॥
चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रो चैव वायसः।
शिखी रौति त्रिमात्रस्तु नकुलस्त्वर्धमात्रकः ॥ ४९॥
कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् ।
न तस्य पठे मोक्षोऽस्ति पापार्हरिव किल्बिषात् ॥ ५०॥
सुतिर्थदागतं व्यक्तं स्वाम्नाय्यं सुव्यवस्थितम् ।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥ ५१॥
मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तदर्थमाह ।
स वग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ ५२॥
अवक्षरं हतायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम् ।
अक्षता शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥ ५३॥
हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् ।
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥ ५४॥
हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम्।
ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ५५॥
शङ्करः शाङ्करीं प्रादाद्दाक्षीपुत्रायधीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः ॥ ५६॥
येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५७॥
येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५८॥
अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५९॥

त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमां य इह पठेत्प्रयतश्च सदा द्विजः।
स भवति धनधान्यपशुपुत्रकीर्तिमानमतुलं च सुखं समश्नुते दिवीति दिवीति ॥ ६०॥

सन्दर्भग्रन्थ सूची

प्राथमिक स्रोत

शिवराज आचार्य कौण्डिन्नयायन (२०११). *पाणिनीयशिक्षा* . वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन.

सत्यप्रकाशदुवे, शम्भुदयाल पाण्डेय (२००४). *पाणिनीयशिक्षा.* राजस्थान: जोधपुर ग्रन्थागार.

रमाशङ्कर मिश्र (२००६). *पाणिनीयशिक्षा.* वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.

दामोदर महतो (१९१०). *पाणिनीयशिक्षा* . दिल्ली: मोतिलाल बनारसीदस.

Manmohan Ghosa (1991) *Paniniya siksa*. Delhi: V.K.Publishing House.

George Cardona (1980). *Panini A survey of Research*. Delhi: Motilal Banarsidas Publishers Private Limited.

द्वितीयक स्रोत

W.Sidney Allen (1965). *Phonetics in ancient india*. london: oxford university press.

Vaman Shivaram Apte (2002). *The pratical Sanskrit-english dictionary*.Delhi: Motilal Banarsidas.

James Ballantyne (1881). *laghu kaumaudi A sankrit grammar*. London: Varadaraj.

Deepro Chakraborty (2015).*Tatreyasiksa: A siksa of taittiriya school*.Delhi: D K print world.

Kapil Dvivedi (2010). *Vaidik Vijnam Sahitya evam Bhasa Sastra*. Varanasi: Electronic Colour Prints pvt.

Franklin Edgerton, (1946). *Sanskrit Historical Phonology: A Simplified outline for the use of Beginners in Sankrit*.New haven: American oriental society.

Ghosh,manmohan(1938).Paniniya Siksa. Delhi: V.K. Publishing House.

Manmohan Ghosh (1938). *Paniniya Siksa*. Culcutta: University of Culcatta.

Pandurang Varma Kane (1930). *History of Dharmashatra*. *Vol.1*.Pune: Bhandarkar Oriental Research Institute.

Shivriaj Kaundinnyajana (2008). *Paniniyasshiksha*. varanasi: Chaukhamba Vidhyabhavan.

Macdonell (1900). *A history of Sanskrit literature*. London: William Heinemann.

macdonell (1917). *A Vedic Reader for Student*. Oxford: At the clanendon press.

Yudhistra Mimamsak (2009). *Paninikalin bharat barsa*.

Max Muller (1859). *Historical Ancient Sanskrit Literature*. London: Spottiswoode and com.

George Cardona (1997). *Panini a Survey of Research*. New delhi: Motilay Banarsidass pvt.Ltd.

D. D. Mahulkar (1987). The Prātisakhya Tradition and Modern Linguistics.Vadodara: Dept. of Linguistics, Faculty of Arts, M.S. University of Baroda.

Yudhisthirhira Mimärsaka (2009). *Siksā-sütrāni: Apisali-pānini-candragomi viracitāni.* Rewali: Ram Lal Kapoor Trust.

Yudhisthirhira Mimāṁsaka (1984). *Samskrta Vyakarana Šāstra kā itihāsa, vol. 2*. Bahalgarh: Ram Lal Kapoor Trust.

Vidhata Mishra (1972). *A critical study of Sanskrit Phonetics*. Varanasi: The Chowkhamba Sanskrit Series Office.

Pathak Madhukar. (1972). *Pāniniyasiksāyāh śiksäntaraih saha samiksā*.

(A comprehensive study of the Paniniya-fiksā with reference to other ancient phonetical works. Varanasi: Pramukhavitaraka Vānīvilāsa Samskrta Pustaka Samsthāna.)

S. Subrahmanya Sastri (1943). *Sargītaratnākara of Sārngadeva with Kalānidhi of Kallinātha and Sudhākara of Simhabhūpāla, vol. 1. Chennai: The Adyar Library.*

Shringy, R. K. & Prem Lata Sharma (ed. and trans.). 1978. Sangīta-ratnākara of Sārngadeva, vol. 1. Varanasi: Motilal Banarsidass.

Śrīrāmacandra, Pullela (ed.). 1980. Kaundinyaśikṣā. Hyderabad: Osmania **University.**

Staal, J. F. (ed.). A reader on the Sanskrit grammarians. Massachusetts: MIT

कोश ग्रन्थ

Aithal, Parameswara. 1991. Veda-laksana Vedic ancillary literature: A descriptive bibliography (Indian edn. 1993). Delhi: Motilal Banarsidass.

Chitrao, M. M. Siddheshwar Shastri. 1964. Bharatavarshiya Prachina Charitra kosha. Poona: Bharatiya Charitrakosha Mandal.

Coward, Harold G. & K. Kunjunni Raja (ed.). 1990. Encyclopedia of Indian

philosophies, vol. 5, the philosophy of the grammarians, reprint 2001. Delhi: Motilal Banarsidass.

Oppert, Gustav. 1880. Lists of Sanskrit manuscripts in private libraries of

southern India, vol. 1. Chennai: Government Press.

Oppert, Gustav. 1885. Lists of Sanskrit manuscripts in private libraries of

southern India, vol. 2. Chennai: Government Press.

parameshwaranand, Swami. 2001. Encyclopaedic dictionary of Purānas, vol. 4. New Delhi: Sarup & Sons.

Raghavan, V. 1966. New catalogus catalogorum, vol. 2. Chennai: University of Madras.

Saith, Shanti Saroop. 1941. Catalogue of Sanskrit manuscripts in the Punjab University Library, vol. 2. Lahore: University of Punjab.

Sastri, N. Subramania. 1956. An alphabetical index of Sanskrit, Telugu & Tamil manuscripts [palm-leaf and paper) in the Sri Venkateswara Oriental Research Institute Library **Tirupati Süvikt oir aprūcapari sahanālo abhāṇdā giya -likhitagranthasūcī). Tirupati: Sri Venkateswara Oriental Research Institute.**

VishvaBandhu. 1959. Catalogue of VVRI manuscript collection in two parts,**vol.1-2. Hoshiarpur: Vishveshvaranand Vedic Research institute.**

Williams, M. Monier. 1899. A Sanskrit English dictionary, reprint 2005. Delhi: **Motilal Banarsidass.**

अन्तर्जालीय स्रोत

http://www.aa.tufs.ac.jp/~tjun/sktdic/

http://archive.org/

http://books.google.co.in/bkshp?hl=en&tab=wp

http://delnet.nic.in/

http://www.dli.ernet.in/

http://www.jstor.org/

http://is1.mum.edu

http://nia.nic.in/?ref=40

http://www.nia.nic.in

http://openlibrary.org

http://www.parankusa.org

http://www.sanskrit-lexicon.uni-koeln.de

http://www.sanskritweb.net

http://scholar.google.co.in/schhp?hl=en

http://spokensanskrit.de/

http://titus.fkidg1.uni-frankfurt.de

http://www.vedamu.org/

http://en.wikipedia.org

http://www.worldcat.org

http://www.youtube.com/watch?v=P9E9BG3md I accessed on 21.06.2013 at 7:50 pm.

http://sacred-earth.typepad.com/yoga/2008/07/prana-vayu-five-vital-forces.html Accessed on 20.07.2013 at 4.17 pm.